प्रकाशक।
जी० आर० भार्गव एण्ड सन्स
चन्दौसी।

संस्करण १९७३

मुद्रक:
भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स,
चन्दौसी।

आमुख

बालक की नैसर्गिक सद्वृत्तियों के उन्नयन में कहानी साहित्य का बड़ा महत्वपूर्ण योग दान रहा है। बालक कहानी के पात्रों से तादात्म्य स्थापित कर लेता है और उनकी चारित्रिक विशेषताओं को जीवनगत मूल्यों के नये परिप्रेक्ष्य में देखकर अपना स्वयं का दृष्टिकोण बनाता है। इसी से उसकी सद्प्रवृतियाँ विकसित और रुचि परिष्कृत होती है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत सकलन मे, राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यो के अनुरूप एवं उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के हिन्दी अनिवार्य विषय के विद्यार्थियों के स्तर को ध्यान में रखकर दस कहानियो का चयन किया गया है। कहानियो का चयन करते समय दृष्टि यह रही है कि इनके पठन पाठन से विद्यार्थी, हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास और उसके विभिन्न परिवर्तित मोड़ो का प्रतिनिधित्व करने वाले लब्ध प्रतिष्ठ कहानीकारों की शिल्प विधि और उनकी लक्ष्यानुभूति से परिचय प्राप्त कर सके। यही कारण है कि विकास युग के प्रतिनिधि कथाकार सर्व श्री प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद, सक्रान्ति-युग के प्रतिनिधि कथाकार सर्व श्री सुदर्शन, अज्ञेय तथा नवीन युग के कथाकार सर्व श्री विष्णु प्रभाकर, अमृतलाल नागर, रजनी पनिकर एव कमलेश्वर की कहानियाँ इस संग्रह में सम्मिलित की गई है।

विषय और शिल्प की दृष्टि से भी इस संग्रह की कहानियो में पर्याप्त वैविध्य है। जहाँ प्रेमचन्द जी की कहानी बड़े भाई साहब में बाल-मनोविज्ञान को विशिष्ट सदर्भो में प्रस्तुत किया है, वहाँ प्रसाद जी की 'ममता' कहानी काव्यात्मकता का परिचय कराती है। जहाँ सुदर्शन की कहानी 'हार की जीत' मनुष्यता के उत्कृष्ट आदर्श-को उपस्थित करती.

है, वहाँ 'अज्ञेय' की 'शत्रु' एक प्रतीकात्मक कहानी है, जिसमें दृढ़ संकल्प शक्ति और आत्म-विश्वास की भावना निहित है। जहाँ विष्णु प्रभाकर की कहानी 'द्वन्द्व' में भावनात्मक एकता के साथ राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि को स्थान मिला है, वहाँ अमृतलाल नागर की कहानी 'एटम बम' में विज्ञान की रचनात्मक-शक्ति के उपयोग करने की ओर भी संकेत है। जहाँ रजनी पनिकर की कहानी 'गुणवन्ती मौसी' में हास्य-व्यंग का भाव प्रदर्शित हुआ है, वहाँ कमलेश्वर की कहानी 'नौकरी पेशा' में कस्बों के विडम्बना पूर्ण जीवन का सही चित्र खींचा गया है।

हिन्दी की भाँति अन्य भाषाओं का कहानी साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध है। अतः प्रस्तुत संकलन में बंगला भाषा से अनूदित श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर रचित 'काबुलीवाला' और मराठी भाषा से अनूदित श्री वि०स० खांडेकर रचित 'कैदी' कहानियाँ जोड़ी गई हैं, जिससे विद्यार्थियों की रुचि देश की अन्य भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करने की ओर उन्मुख हो और उनमें भावनात्मक एकता के संस्कार जाग्रत हों।

प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ में संक्षेप में कहानीकार का जीवन परिचय, उसकी साहित्य सर्जना, कहानी कला एवं संकलित कहानी की विशेषताएँ दी गई हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में कहानी और उसकी विकास यात्रा पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस विवेचन में कहानी की परिभाषा उसके तत्व, कहानी के प्रकार, हिन्दी कहानी की विकास यात्रा, आधुनिक और प्राचीन कहानी का अन्तर आदि को स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

प्रत्येक कहानी की समाप्ति पर अभ्यासार्थ नवीन प्रणाली के वस्तुनिष्ठ, लघूत्तरात्मक, निबन्धात्मक प्रश्न दिये गये हैं, जिनके द्वारा ज्ञान, अवबोध एवं अभिव्यक्ति की जाँच की जा सके। कुछ प्रश्न ऐसे भी हैं जिनसे मौलिकता की जाँच भी की जा सकेगी।

आशा है कि प्रस्तुत कहानी संग्रह विद्यार्थियों के व्यावहारिक

ज्ञान, जीवन की उदात्त अनुभूतियाँ, विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों एवं साहित्यिक अभिरुचि के विकास एवं परिष्कार में सहायक होगा।

शिक्षक बन्धु प्रत्येक कहानी के प्रेरणा बिन्दु को ध्यान में रखते हुये यदि विद्यार्थियों को कहानी का अध्ययन करावेंगे तो निश्चित रूप से विद्यार्थियों की रुचि एवं सद्प्रवृत्तियों का परिष्कार होगा, अर्थग्रहण की क्षमता विकसित होगी एवं उनकी अभिव्यक्ति में भी निखार आवेगा।

अन्त में हम सकलित कहानियों के दिवगत एवं वर्तमान कहानीकारों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते है जिनकी कृतियाँ प्रस्तुत सग्रह में संकलित की गई हैं और जिसके कारण ही इस सकलन को इच्छित रूप में प्रस्तुत किया जा सका है।

सम्पादक

अनुक्रम

हिन्दी कहानी और उसकी विकास-यात्रा

कहानी :

कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति उतनी ही प्राचीन है जितनी मानव-सभ्यता। आदिम मानव ने अपने भावो को व्यक्त करने के लिये चाहे गद्य का माध्यम अपनाया हो चाहे पद्य का, उसके पीछे नेपथ्य मे कोई न कोई कहानी अवश्य चलती रही है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ कहानी की कथा-प्रणाली मे कई परिवर्तन आये। पहले कथावाचक कहानी कहकर श्रोता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता था। श्रोता 'हुंकारा' देकर कथावाचक की बात हृदयगम करने की स्वीकृति देने के साथ-साथ कथा के रस की निरन्तरता और कथावाचक के उत्साह को बनाये रखने में सहायक होता था। घरो में बच्चे, बूढ़ी दादी, नानी या माँ से कहानियाँ सुना करते थे, गाँवो की चौपाल मे भोजनोपरान्त शीतकाल की दीर्घ रात्रियो मे आग के चारो ओर गोलाकार रूप मे बैठकर कहानियाँ सुनने-सुनाने की जीवन परम्परा थी, अपने महलो मे मसनदो के सहारे बठे हुये रईस लोग पेशेवर कथावाचको से कहानियाँ सुन-सुन कर अपना मनोविनोद करते थे। पर छापेखाने के आविष्कार के साथ-साथ कहानियाँ सुनने-सुनाने की यह परम्परा लुप्त सी हो गई। अब कहानी कथनीय से पठनीय बन गई। उसके कथ्य और शिल्प मे युगानुरूप परिवर्तन उपस्थित हो गया।

यह सही है कि कहानी का रूप अब यह नही रहा जो पहले था, पर उसकी महत्ता, लोकप्रियता और प्रेषण-शक्ति में किसी प्रकार की कमी नही हुई। आज भी कहानी, साहित्य की अत्यन्त लोकप्रिय विधा बनी हुई है। कहानी की प्रभावक शक्ति का वर्णन करते हुये डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है, 'साहित्य के माध्यम से डाले जानेवाले

जितने भी प्रभाव हो सकते हैं, वे रचना के इस प्रकार मे अच्छी तरह से उपस्थित किये जा सकते हैं। चाहे सिद्धान्त-प्रतिपादन अभिप्रेत हो, चाहे चरित्र-चित्रण की सुन्दरता इष्ट हो, किसी घटना का महत्व-निरूपण करना हो अथवा किसी वातावरण की सजीवता का उद्‌घाटन ही लक्ष्य बनाया जाय, क्रिया का वेग अंकित करना हो या मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करना अभिष्ट हो, सभी कुछ इसके द्वारा सम्भव है।

अब कहानी किसी नैतिक-दार्शनिक या सामाजिक-राजनीतिक विचार-धारा को प्रतिपादित करने वाली द्वितीय श्रेणी की विधा नही रही है। वह अपनी पुरानी मनोरंजन एव नैतिक उपदेशो की कैंचुल छोड़ कर स्वयं कहानीकार के विचारों और उसके भोगे हुये क्षणों को अभिव्यक्त करने वाली स्वतंत्र विधा के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई है। उसका यह बदलता हुआ रूप कहानी की विभिन्न परिभाषाओ मे प्रतिबिम्बित हो उठा है।

कहानी की परिभाषा:

कहानी एक कथात्मक (विवरणात्मक) संक्षिप्त गद्य रचना है। उसमे घटनाएँ होती है जो कुतूहल द्वारा चरमबिन्दु की ओर अग्रसर होती है। उसमें सम्पूर्ण मनुष्य नही, उसके चरित्र का एक पक्ष चित्रित रहता है। वह अपने आप मे पूर्ण होती है और उसके विभिन्न तत्व एकोन्मुख प्रभावान्विति मे पूर्ण सहायक होते है। एक सफल कहानी मे प्रभावान्विति, रोचकता, संवेदना की एकात्मकता और नाटकीयता का गुण होना आवश्यक है।

कहानी के तत्व :

तत्वों की दृष्टि से विद्वानों ने कहानी के छः प्रमुख तत्व माने हैं।

१. कथानक:—कहानी के शरीर मे कथानक हड्डियो के समान है। कथानक की रचना अत्यन्त वैधानिक तरीके से, क्रमिक विकास के रूप में होनी चाहिये।

अच्छे कथानक के लिये चार प्रमुख गुण अपेक्षित है मौलिकता, सम्भाव्यता, सुगठितता और रोचकता। मौलिकता का अर्थ है नवीनता। यह नवीनता कथागत न होकर दृष्टिकोणपरक भी हो सकती है। नवीनता के नाम पर असम्भव समझी जाने वाली घटनाओ की सयोजना करना ठीक नही। सभाव्यता का अर्थ है-कथानक मे आने वाली घटनाओं की स्थिति। घटित प्रसग ऐसे लगे जो मानव-जीवन मे सम्भव दीख पड़ें। देश-विरुद्ध और काल-विरुद्ध दोषो से कथानक को बचाये रखना चाहिये। कथानक की सुगठितता का अर्थ है—विभिन्न घटनाओं का कार्य-कारण शृंखला में बँधकर क्रमशः बढते जाना। रोचकता से कहानी अन्त तक आकर्षक बनी रहती है। इसके लिये जिज्ञासा एव कुतूहल की सृष्टि की जाती है।

विकास की दृष्टि से कथानक के चार भाग किये जा सकते है।

(१) आरम्भ—कहानी का आरम्भ किसी पात्र के परिचय, वातावरण के वर्णन या दो पात्रों के संवाद द्वारा होता है। (२) विकास—इसमें पात्र की मानसिक अवस्था, स्थिति या भावना का विकास दिखाया जाता है। (३) चरम सीमा—यहाँ कहानी की रोचकता अथवा सुन्दरता में क्षणभर के लिये स्तब्धता आ जाती है और पाठक के हृदय में कम्पन होने लगता है। दुखान्त कहानियो मे यह स्थिति अन्त मे आती है। (४) अन्त—इसमें कहानी का परिणाम निहित रहता है। वातावरण, घटना और चरित्रों के पूर्ण विकास के अनन्तर कथानक का अन्त होता है। कुछ कहानियो में इस अवस्था पर आकर सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन कर दिया जाता है तथा कुछ मे यह परिणाम अस्पष्ट रहकर पाठकों को मनन करने की सामग्री प्रदान करता है। आजकल की कतिपय कहानियाँ चरमसीमा पर पहुँच कर ही समाप्त हो जाती है।

२. पात्र और चरित्र-चित्रण : पात्र कथानक के सजीव सचालक होते है। इनसे एक ओर कथानक का आरम्भ, विकास और अन्त होता है तो दूसरी ओर हम कहानी मे इनसे आत्मीयता प्राप्त करते है। पात्र

सर्वथा सजीव और स्वाभाविक हो तथा इनकी अवतारणा कल्पना के धरातल से न होकर कहानीकार की आत्मानुभूति के धरातल से हो, ताकि पात्र और पाठक मे आसानी से साधारणीकरण हो सके। आज कहानियो में कथानक की अपेक्षा चरित्र पर कहानीकार का विशेष ध्यान केन्द्रित रहता है। कहानीकार पात्र को इस ढंग से विभिन्न घटनाओं में सलग्न करे कि उसका आचरण प्रदर्शित न हो वरन् मनोविश्लेषण के द्वारा उसकी आन्तरिक विशेषताएँ प्रकट हो। कहानी मे पात्रो की सख्या अधिक न हो। प्रमुख पात्र का चरित्र ही क्षण भर के लिये अमिट प्रभाव छोडकर चला जाय। पात्र लेखक की कठपुतली न हो वरन् स्वतंत्र व्यक्तित्व के धनी हों।

सामान्यत: चरित्र-चित्रण चार प्रकार से किया जाता है– (१) वर्णन द्वारा (२) सकेत द्वारा (३) सवाद द्वारा और (४) क्रिया-व्यापार द्वारा।

चरित्र के मुख्य दो प्रकार है—

(१) वर्गगत चरित्र–जो अपने वर्ग की सम्पूर्ण विशेषताओ के साथ प्रस्तुत होते हों, जैसे प्रेमचन्द के पात्र।

(२) व्यक्ति चरित्र–जो अपनी स्वयं की विशेषताओ से सम्पन्न हो, जैसे—जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि के पात्र।

३. संवाद : सवाद कहानी का आवश्यक अंग है। यदि कहानी में सवाद न होकर केवल वर्णन ही होगे तो पात्र अव्यक्त रह जायेंगे तथा प्रभाविष्णुता व सवेदनशीलता नष्ट हो जायगी, और यदि केवल सवाद हो तो वह कहानी, कहानी न रहकर एकाकी नाटक बन जायगी। अत: सवाद और वर्णन मे ठीक समन्वय व अनुपात होना चाहिये।

कहानी मे संवाद का कार्य है कथा की गति को आगे बढाना, पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करना, भाषा-शैली का निर्माण करना और कथा को रस-दशा तक पहुँचाना।

सवाद का सबसे बड़ा गुण है—जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न करना। सवाद का तारतम्य ऐसा हो जैसे नदी मे लहरों की गति और उस पर

वायु का सहज सगीत, जिसके सहारे पाठक के हृदय मे उत्तरोत्तर कहानी पढ़ने की आकांक्षा और जिज्ञासा दोनों बनी रहें।

रूप-विधान की दृष्टि से संवाद की तीन शैलियाँ प्रचलित है—

(१) पूर्ण नाटकीयता के रूप में—अर्थात् केवल सवाद हो, उसमें कहानी, कार्य, स्थिति के सकेत न हों, (२) सवाद के बीच-बीच कहानीकार पात्रो की मुद्रा और स्थितियो की ओर भी सकेत करता चलता हो। (३) पात्रों की मुद्राओं और परिस्थितियों के विवेचन के साथ-साथ उन कार्यकलापो और घटनाओं का उल्लेख हो जो पात्रो के संवाद मे चरितार्थ होते रहते है।

४. वातावरणः—कहानी-कला का मेरुदण्ड है वास्तविक जीवन। यह वास्तविक जीवन देश, काल और जीवन की विभिन्न सत्-असत् प्रवृत्तियो और परिस्थितियों से निर्मित होता है। इन तत्वो को एक साथ एक ही स्थान पर चित्रित करना कहानी मे वातावरण उपस्थित करना है। जयशंकर प्रसाद ने अपनी कहानियो मे देश, काल और परिस्थिति का सुन्दर चित्र उतारा है।

आज कहानीकार सामान्यतः परिस्थिति का चित्रण ही प्रस्तुत करता है। वह पूरे सदर्भ मे सामाजिक परिवेश को देखता है, उसका यथार्थ वर्णन करता है। वातावरण के माध्यम से वह कहानी मे एकान्तिक प्रभाव लाने की स्थिति उत्पन्न करता है। कभी कहानीकार कहानी का प्रारम्भ ही वातावरण के शब्द-चित्र से करता है और कभी वातावरण को ही चरम सीमा का आधार बना देता है। वातावरण प्रस्तुत करते समय, देश-काल का सम्यक् ध्यान रखना अनिवार्य है अन्यथा कहानी सदोष बन जाती है। ऐतिहासिक कहानियो मे कहानीकार को पूर्ण सजगता के साथ चलना पड़ता है।

४. भाषा-शैलीः—कहानी की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसमे मूल सवेदना को व्यक्त करने की पूरी क्षमता हो। वह ओज, माधुर्य गुणों से युक्त हो। विषयानुकूल एव रसानुकूल हो। हिन्दी

कहानी मे सामान्यत. चार प्रकार की भाषा-शैलियाँ प्रचलित हैं। (१) शुद्ध सस्कृत गर्भित शैली, जिसके प्रतिनिधि कलाकार जयशकर प्रसाद है। (२) सरल प्रवाह-मयी शैली, जिसके प्रतिनिधि कलाकार प्रेमचन्द है। (३) फड़कीली लाक्षणिक शैली, जिसका प्रतिनिधित्व पाडेय बेचन शर्मा करते है। (४) रोचक भाषा शैली—जिसके प्रतिनिधि कलाकार सर्वश्री अज्ञेय और यशपाल है, जो सरल से सरल और गूढ़ से गूढ़ भावों को मूर्त रूप देने मे समर्थ है।

शैली का सम्बन्ध कहानी के सम्पूर्ण तत्वो से रहता है। आजकल कहानी लिखने की प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार है—

(१) ऐतिहासिक शैली.—इसमे कहानीकार कथावाचक की भाँति वर्णनो के माध्यम से कहानी कहता चलता है। इसमे लेखक को सबसे अधिक स्वतन्त्रता रहती है।

(२) आत्म-चरित्रात्मक शैली.—इसमे कहानी का प्रमुख पात्र आरम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कहानी स्वय कहता है। कभी-कभी कहानी के विभिन्न पात्र क्रमश. आत्म कथा सुनाते हैं और सब की आत्म-कथाओ के समन्वय से समूची कहानी बन जाती है। कहानीकार स्वय भी आत्म-भाषण के रूप मे पूरी कहानी कह जाता है। डा० श्रीकृष्ण लाल के शब्दो मे, "जिन कहानियो मे एक ही प्रधान चरित्र होता है और अन्य सभी चरित्र गौण होते है, उन कहानियो के लिये यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है।"

(३) पत्रात्मक शैली:—आत्म-चरित शैली का ही एक अग है पत्रात्मक शैली। इसमे कभी कई पत्रो के माध्यम से कहानी कही जाती है, कभी एक ही पत्र समूची कहानी प्रस्तुत कर देता है और कभी आरम्भ तथा विकास तो पत्र द्वारा किया जाता है पर अन्त मे कहानीकार अपने स्वतन्त्र विवरण, विवेचन और विश्लेषण द्वारा कहानी समाप्त कर देता है।

(५) डायरी शैली:—पत्रात्मक शैली का ही दूसरा रूप है डायरी

शैली। इसमे डायरी के विभिन्न पृष्ठो द्वारा पूरी कहानी कह दी जाती है। इस शैली मे अतीत का वर्णन, पूर्ण अनुभूति और भावुकता के साथ, किया जाता है।

(५) नाटकीय शैली.—इसमे सवाद की प्रधानता रहती है, सवादों के माध्यम से ही विभिन्न घटनाओं, परिस्थितियों और पात्रो का चित्रण किया जाता है। कहानी का आरम्भ, विकास और अन्त सवाद द्वारा ही होता है।

(६) मिश्र शैली—इसमें सभी शैलियों का समावेश कर दिया जाता है। डा० लक्ष्मी नारायण लाल के शब्दो में, "रूप विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियां मिश्रित शैली में ही लिखी जा सकती हैं, क्योकि इसमें कहानीकार को इतनी विधानात्मक स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपनी कहानी मे प्रभाव लाने के लिये, चरित्र-चित्रण और विश्लेपण आदि के लिये, उन समस्त शैलियो का सदुपयोग कर सकता है, जो उसकी अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण, सहज और शक्तिशाली सिद्ध होगी। इस शैली के माध्यम से कहानी मे सम्यक् विकास और व्यापकता उपस्थित होती है।" हिन्दी की प्राय: सर्वश्रेष्ठ कहानियां इसी शैली के अन्तर्गत आती है।

६. उद्देश्य:—कहानी का प्रारम्भिक उद्देश्य चाहे मनोरजन और किसी नैतिक उपदेश की प्ररूपणा करना रहा हो पर आज कहानी का उद्देश्य न तो 'पंचतत्रादि' ग्रन्थो की भांति सीधे उपदेश देना है न "कथा-सरित्सागरादि ग्रन्थों की भांति केवल मनोरजन करना है। आज की कहानी मानव जीवन के किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को उद्घाटित करती है। सक्षेप में कहानी का उद्देश्य है—किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को जगाकर हृदय को सवेदनशील बनाना, विचार या सिद्धान्त विश्लेपण का प्रतिपादन और प्रचार करना, सुन्दर भाव-चित्रों द्वारा मन का परिष्कार और मनोरंजन करना तथा यथार्थ के सुरुचिपूर्ण सन्देश द्वारा उच्च आदर्श का अव्यक्त पर स्पष्ट प्रदर्शन करना। वर्तमान कहानी हमारे जटिलतम जीवन के संघर्ष की अभिव्यक्ति बन गई है।

कहानी के प्रकार :

विषय और स्वरूप की दृष्टि से कहानी को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) घटना-प्रधान कहानी (२) चरित्र-प्रधान कहानी (३) वातावरण-प्रधान कहानी और (४) भाव-प्रधान कहानी।

कहानियों के इन विभिन्न वर्गों की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैं—

(१) घटना-प्रधान कहानी:—घटना प्रधान कहानियों में घटनायें ही महत्वपूर्ण होती हैं। आरम्भ से अन्त तक कहानी की विविध घटनायें कुतूहल की शृंखला में बँधकर चलती हैं और उत्तरोत्तर पाठक की जिज्ञासा को उत्तेजित करती जाती है। अन्त में यह जिज्ञासा शान्त हो जाती है और पाठक का मनोविनोद हो जाता है। कथानक के विकास में विभिन्न कथानक रूढ़ियों और दैनिक संयोगों से विशेष सहायता ली जाती है। चरित्र-चित्रण और वातावरण की उपेक्षा के कारण इन कहानियों में कलात्मक सौन्दर्य का प्रायः अभाव रहता है। कहानी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इसी प्रकार की कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। स्थूल आदर्शवादी तथा जासूसी-तिलस्मी कहानियाँ प्रायः इसी वर्ग में आती हैं। इस वर्ग के कहानीकारों में सर्वश्री गोपाल राम गहमरी, दुर्गा प्रसाद खत्री, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' आदि के नाम उल्लेखनीय है।

(२) चरित्र-प्रधान कहानी:—चरित्र-प्रधान कहानियों में घटना परिस्थिति, कार्य आदि की तुलना में चरित्र को महत्व दिया जाता है। कहानीकार का ध्यान पाठकों को घटनाओं के जाल में उलझाने की ओर न रहकर कहानी के विभिन्न पात्रों के चरित्र-निरूपण की ओर रहता है। यहाँ चरित्र को उसके सम्पूर्ण सदर्भों में न देखकर उसके व्यक्तित्व के किसी एक पक्ष का, मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि में, मार्मिक उद्घाटन किया जाता है। इन कहानियों में बहिर्द्वन्द्व की तुलना में अन्तर्द्वन्द्व को अधिक महत्व दिया जाता है। वर्तमान युग में मनोविश्लेषण पद्धति के विकास से चरित्र-प्रधान कहानियों को बहुत बल मिला है। इस वर्ग

के कहानीकारों में सर्वश्री प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जैनेन्द्र कुमार, यशपाल, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव आदि के नाम उल्लेखनीय है।

(३) वातावरण-प्रधान कहानी:—वातावरण-प्रधान कहानियों मे घटना-क्रम के चित्रण मे देश-काल की परिस्थितियो को प्रधानतया उभारा जाता है। ऐतिहासिक कहानियो मे वातावरण को चित्रित करने का विशेष अवसर रहता है क्योकि वहाँ किसी विशेष युग की सस्कृति और परिस्थिति का आभास, वर्णन और सवाद द्वारा कराना होना है। इन कहानियो मे भौतिक वातावरण के साथ-साथ मानसिक वातावरण की भी प्रधानता रहती है। इस वर्ग के कहानीकारो में सर्वश्री जयशकर प्रसाद, अज्ञेय, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(४) भाव-प्रधान कहानी :—भाव-प्रधान कहानियो मे किसी एक *भाव या विचार के आधार पर कथानक का विकास किया जाता है।* गद्य काव्य से मिलती-जुलती जो लघु कथाएँ और प्रतीक कथाएँ लिखी जाती हैं उनका समावेश इस वर्ग की कहानियों में किया जा सकता है। ये कहानियाँ सामान्यत. किसी चिरन्तन या सामयिक सत्य की व्यजना के लिये लिखी जाती है। इन कहानियो का मुख्य लक्ष्य प्रभाव की सृष्टि करना होता है। इस वर्ग के कहानीकारों मे सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, रायकृष्ण-दास, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विकास यात्रा :

कहानी का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ समान रूप से चला है। प्रारम्भिक कहानियाँ शेष सृष्टि के साथ मानव के सम्बन्ध-निर्णय की कहानियाँ है। इनमें यायावर जीवन की स्मृतियाँ अकित मिलती है। उनके मूल मे भय, आश्चर्य जैसे भाव रहे है। वेद, उपनिषदो में इसके सकेत मिलते हैं। कहानी के विकास का दूसरा मोड़

मानव-मानव के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करता है । इ
अवस्था में मनुष्य को आँधी, पानी, बिजली, शेर, चीते आदि हिंस
जानवरों का भय उतना नहीं रहा जितना अपने पड़ौसी का । यहाँ पश
पक्षी आदि मानव की बोली बोलकर कभी उपदेश देते हैं तो क
चेतावनी । 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' की कहानियाँ इसी प्रकार की हैं
कहानी के विकास के तीसरे मोड़ पर सही-गलत, धर्म-अधर्म, शुभ-अशु
आदि बातों को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । इनमें ए
पक्ष प्रश्न उपस्थित करता है और दूसरा पक्ष कथाओं द्वारा उदाहर
देकर उस जिज्ञासा का समाधान करता चलता है । विभिन्न पुराण अ
'रामायण', 'महाभारत' आदि काव्य इसी कोटि में आते हैं । कहानी
विकास का चौथा मोड़ मध्ययुगीन जीवन से सम्बन्धित है । इसमें राज
रानी, मंत्री, कोतवाल, सेठ, साहूकार आदि वर्गों का परिचय मिलत
है । षड़यन्त्र, हाय-हत्या, न्याय-अन्याय, सतीत्व, दुराचारिता, स्वामि
भक्ति, विश्वासघात आदि भावों से ये कहानियाँ भरी पड़ी है ।

आधुनिक कहानी और प्राचीन कहानी :

आधुनिक कहानी और प्राचीन कहानी मे आज पर्याप्त अन्तर है
प्राचीन काल मे कहानी का जो रूप था, वह आज नहीं है । बा
गुलाबराय के शब्दों में, "आजकल की हिन्दी कहानियाँ जिनको गल्
आख्यायिका, लघु कथा भी कहते हैं, है तो भारतीय कहानी की ह
सतति किन्तु विदेशी संस्कार लेकर आई हुई । खद्दर के सूट की भाँ
उनकी सामग्री प्रायः देशी रहती है पर काट-छाँट अधिकांशतः विदेश
या विलायती ढंग की होती है ।" इस कथन से स्पष्ट है कि रूप औ
शैली में आधुनिक कहानी प्राचीन कहानी से पर्याप्त भिन्न है ।

प्राचीन कहानियो का क्षेत्र इतना व्यापक होता था कि उसमें पशु
पक्षियों तक का भी पात्रों के रूप में समावेश होता था किन्तु आधुनिक
कहानी सामान्यतः मनुष्य वर्ग तक ही सीमित है । प्राचीन कहानी ि

उच्च वर्ग—राजा, रानी, सेठ, सेठानी के जीवन की काल्पनिक घटनाओं का वर्णन ही अधिक रहता था जबकि आधुनिक कहानी मे सामान्य जन के जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण होता है। उसमे निम्न व निम्न मध्य वर्ग की वाणी मुखरित हुई है। प्राचीन कहानियो मे घटनाओ की प्रधानता रहती थी, चरित्र चित्रण की ओर ध्यान नही दिया जाता था। न चरित्र का विश्लेषण होता था न उसमें चरित्र परिवर्तन को ही स्थान था। आधुनिक कहानी में घटनाओं की अपेक्षा चरित्र-विश्लेषण को एव मानसिक द्वन्द्व को प्रधानता दी जाती है। प्राचीन कहानी में अलौकिकता, अस्वाभाविकता, आदर्शवादिता, काल्पनिकता, दैववाद एवं आकस्मिक सयोगों के प्रति अधिक आग्रह रहता था जबकि आधुनिक कहानियों मे लौकिकता, स्वाभाविकता, यथार्थवादिता, विचारात्मकता, पुरुषार्थवाद और कार्य-कारण शृंखला पर अधिक बल दिया जाता है। प्राचीन कहानियो मे स्वर्ग-लोक और परी-देश की वैभवपूर्ण बातें निहित थी जबकि आधुनिक कहानियो मे इसी धरती का सुख-दुख अभिव्यक्त होता है। प्राचीन कहानी मे मनोरजन व उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान थी, आज की कहानियाँ जीवन के सघर्ष की सबल अभिव्यक्ति बन गई हैं।

डा० परमानन्द श्रीवास्तव ने प्राचीन कहानी की रचना-प्रक्रिया की सीमाएँ बताते हुए लिखा है, "प्राचीन कहानियो के रचना-विधान में कलात्मक चेतना का उपयोग नही के बराबर किया गया है। प्राचीन कहानी अनेक रहस्यपूर्ण प्रसगो का विवरण तो देती है पर वह बिन्दु अकित नही कर पाती जिसमें कहानी के रचनात्मक विकास की सभावना हो।"

प्राचीन कहानियों का शिल्प-विधान लोककथा-शिल्प के निकट है। उसके निर्माण में धार्मिक-पौराणिक कथाओं की परम्परा से लेकर उर्दू-फारसी की मसनवी शैली की आख्यान परम्परा का सम्मिलित प्रभाव है। आधुनिक कहानी इस रूढ़िगत शिल्प-विधान से मुक्त है।

कहानी का प्रारम्भिक विकास:

आधुनिक कहानी के आविर्भाव से पूर्व हमारे यहाँ कहानी की एक लम्बी परम्परा रही है। कहानी का बीज 'सवाद सूक्त' के रूप में ऋग्वेद मे मिलता है। ऋग्वेद मे, बीज रूप में प्राप्त कथाओं का विकास ही 'ब्राह्मण' ग्रथों तथा उपनिषदों मे हुआ। ये कहानियाँ अधिकांशतः रूपकात्मक हैं। इनका मूल विषय आत्मा और परमात्मा की ही परिधि में भ्रमण करना रहा है। इनमे एक पक्ष जिज्ञासा उपस्थित करता है और गुरू या दूसरा पक्ष, कथाओं द्वारा उदाहरण देकर उस जिज्ञासा का समाधान करता चलता है। जिज्ञासा और उसके समाधान की यह प्रवृत्ति ही आगे चलकर 'रामायण' और 'महाभारत' के रूप मे महाकाव्यो का आकार धारण कर विकसित हुई। इन सबके बिखरे प्राचीन आख्यान ही पुराणो के रूप मे स्थिर हुये। पुराणों की ये कथाएँ दो रूपों मे विकसित हुईं। मौखिक कथाओं के रूप मे लोक मे इनका प्रचलन हुआ और इन्ही के आधार पर कई स्वतंत्र कथाएँ भी बनी।

सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई कथा-साहित्य की यह परम्परा हिन्दी के आदिकालीन चारणकाव्यो, मध्यकालीन प्रेमगाथा काव्यो, वैष्णव वार्ताओ और अन्ततः भारतेन्दुकालीन कथात्मक रचनाओं मे विकसित हुई। इस विकास मार्ग से आकर भी आधुनिक हिन्दी कहानी एकाकी की भाँति पाश्चात्य कहानी के आधार पर ही प्रतिष्ठित हुई।

आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास :

आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास को भलीभाँति समझने के लिये उसके इतिहास को चार विभागो में बाँटा जा सकता है (१) आविर्भाव युग (२) विकास युग (३) संक्रान्ति युग और (४) नवीन युग।

(१) आविर्भाव युग :—भारतीय कथा साहित्य की विस्तृत और समृद्ध परम्परा के होने पर भी आधुनिक हिन्दी का लेखन पर्याप्त विलम्ब से हुआ और वह भी पश्चिमी कहानी के अनुकरण पर। आधुनिक

कहानी का आयात बंगला के माध्यम से पाश्चात्य देशों से हुआ। बंगाल भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रथम केन्द्र बना और स्वभावतः पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव भी सर्वप्रथम बंगला भाषा ने ग्रहण किया। यही कारण है कि हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियाँ बंगाली कहानियों के रूप एवं भाव के प्रभाव से बच न सकीं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य और जीवन के बीच टूटे हुये सम्बन्धों को जोड़कर, हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग दिया। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी कथाओं में लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर', सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान', इंशा अल्ला खाँ कृत, 'रानी केतकी की कहानी', तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत 'राजा भोज का सपना' का उल्लेख किया जा सकता है, किन्तु चमत्कार मूलक कल्पना और पूर्व निर्धारित आदर्शवाद के कारण इन्हें कहानियाँ मानने में संकोच होता था।

भारतेन्दु के समय की कहानी स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी। उन्होंने स्वयं 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' जैसी कल्पना प्रधान व्यंग्य कहानी लिखी। कहानी की अनुवाद परम्परा ने उनके समय में विशेष जोर पकड़ा। बंगमहिला और पार्वती नन्दन ने बंगला से, रायकृष्णदास और सूर्यनारायण दीक्षित ने अंग्रेजी से तथा गदाधर सिंह और जगन्नाथ त्रिपाठी ने संस्कृत से अनेक कहानियों को हिन्दी में अनूदित किया। अनुवादों की तुलना में मौलिक कहानियाँ बहुत कम लिखी गईं।

(२) विकास-युगः—आविर्भाव युग के बाद कहानी का विकास युग आता है। इस युग में कहानियों के कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण तथा वातावरण की योजना की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस युग के प्रथम उल्लेखनीय कहानीकार हैं—श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी। गुलेरी जी ने केवल तीन कहानियों की रचना की है—'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था'। इनमें से अन्तिम कहानी हिन्दी-जगत् को

उनकी अमर देन है। इसमें लहनासिंह के चरित्र को माध्यम बनाकर कर्त्तव्य की कठोरता के बीच प्रेम की मधुरता को विकसित होते हुये दिखाया गया है।

हिन्दी कहानी को जन-जीवन से जोड़ने और उसके क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। प्रेमचन्द की कहानियाँ आर्य समाजी भावना और गांधीवादी दृष्टि में राजनीतिक सुधार की कहानियाँ हैं। भूल-सुधार और हृदय-परिवर्तन उनकी अधिकांश कहानियों की रीढ़ है। यथार्थ जीवन को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर उन्होंने समाज की रूढ़ियों, धर्म के बाह्य आडम्बर, राजनीति के खोखलेपन, उत्कट देश प्रेम और आर्थिक वैषम्य के सशक्त चित्र खींचे हैं। उन्होंने हिन्दी में यथार्थवादी आदर्शोन्मुख कहानियाँ लिखने की परम्परा डाली। उनकी दृष्टि कल्पित कथानक और रोमांचकारी घटनावली के स्थान पर जीवन की वास्तविकता पर पड़ी। वे अपनी प्रारम्भिक कहानियों में घटनाओं को महत्व देते रहे पर धीरे-धीरे उनकी दृष्टि चरित्र की ओर गई और अन्तत: मनोवैज्ञानिक अनुभूति को ही उन्होंने अपनी कहानी का आधार स्वीकार किया। व्याख्या के स्थान पर संवेदना को महत्व दिया। प्रारम्भ में प्रेमचन्द आदर्शवाद से बँधे रहे। धीरे-धीरे वे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की ओर बढ़े। 'बड़े भाई साहब' ऐसी ही कहानी है। अन्त तक आते-आते वे पूर्ण यथार्थवादी बन गये। 'कफन' और 'पूस की रात' इस दृष्टि से लिखी गई कहानियाँ हैं।

विकास-युग के अधिकांश कहानीकार प्रेमचन्द की शिल्प-कला से प्रभावित रहे हैं। सियारामशरण गुप्त की कहानियाँ यथार्थ पृष्ठभूमि पर निर्मित होकर भी आदर्शवादी जीवन-दृष्टि पर अधिक बल देती हैं। वृन्दावन लाल वर्मा ने बुन्देलखण्डी पृष्ठभूमि पर कई ऐतिहासिक, सामाजिक और शिकार सम्बन्धी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रवृत्ति अधिक है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियों में यथार्थ के धरातल पर आदर्श का चित्रण हुआ है। भगवतीचरण

वर्मा की कहानियों मे सामाजिक रूढ़ियों और विडम्बनाओ के प्रति सशक्त व्यंग्य मिलता है। अन्य कहानीकारो मे विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' और सुदर्शन के नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने आदर्शवादी दृष्टिकोण मे कई सामाजिक एव पारिवारिक कहानियाँ लिखी। सुदर्शन की 'हार की जीत' ऐसी ही कहानी है।

प्रेमचन्द के समकालीन कहानीकारो मे जयशंकर प्रसाद का योग-दान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी कहानी मे भावमूलक आदर्शवादी परम्परा की नीव डाली। प्रसाद मूलतः कवि और नाटककार है। उनके कवि और नाटककार रूप ने उनके कहानीकार को स्थान-स्थान पर प्रभावित किया है। उनकी कहानियाँ कभी गीतिकाव्य की संवेदना मे प्रेरित होकर लिखी गई है तो कभी महाकाव्य की संवेदना से प्रेरित होकर। जहाँ वे गीतिकाव्य की संवेदना मे प्रेरित हुये हैं, वहाँ उनकी कहानियाँ आकार मे छोटी, गद्य गीत सी बन गई है, और जहाँ वे महाकाव्य की सवेदना से प्रेरित हुये है वहाँ उनकी कहानियाँ अधिक लम्बी और नाटकीय बन गई है। इतिहास के किसी प्रसंग या घटना को आधार बनाकर लिखी गई उनकी कहानियाँ सामान्यतः बड़ी है और अपने पूरे युग का चित्रण करती है। इनमे एक ही संवेदना के साथ कई प्रसंग लिपटे हुये हैं। 'आकाश दीप' और 'पुरस्कार' कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रेम और कर्त्तव्य का सघर्ष बड़ी कुशलता के साथ चित्रित किया गया है। प्राचीन भारत की वैभवपूर्ण सास्कृतिक झाँकी का चित्रण भी इन कहानियों मे देखने को मिलता है। प्रसाद के अधिकाश पात्र बौद्ध-दर्शन से प्रभावित है। इसलिए वे अधिक कारुणिक, कर्त्तव्य पर मर-मिटने वाले, त्याग, बलिदान और समर्पण के प्रतीक हैं। 'ममता' कहानी इसका एक नमूना है।

प्रसाद की छोटी कहानियाँ सामाजिक मर्यादाओ के विरुद्ध अधिक यथार्थवादी रूप मे सामने आई है, पर वे आदर्शवाद से एकदम मुक्त नहीं हैं। प्रसाद के आदर्शवाद की दो मुख्य विशेषताएँ हैं पुरातन की

मर्यादा का समर्थन और प्रचलित सामाजिक मान्यताओं के प्रति क्रांति। वातावरण-निर्माण एवं परिस्थिति योजना में प्रसाद को अभूतपूर्व सफलता मिली है। उनकी भाषा अलंकारिक और समास प्रधान है।

प्रसाद की शिल्पकला से कम ही कहानीकार प्रभावित हुये। चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' की कहानियों में प्रसाद की संस्कृत निष्ठता और कवित्व पूर्ण-शैली के दर्शन होते हैं। प्रसाद संस्थान के अन्य कहानीकारों में सर्वश्री रायकृष्णदास, कमलाकान्त वर्मा, वाचस्पति पाठक, विनोद शंकर व्यास, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विकास-युग की उपलब्धियों में जे०पी० श्रीवास्तव और अन्नपूर्णानन्द की हास्यरस की कहानियाँ तथा महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, उषा देवी मित्रा, होमवती देवी, कमला चौधरी आदि की पारिवारिक कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

(३) संक्रान्ति युग :—संक्रान्ति युग में हिन्दी कहानी का क्षेत्र विस्तृत हुआ। विकास युग में साधारण मनोविज्ञान और गाँधीवाद ही दो मुख्य प्रवृत्तियाँ थी। इस युग में कई नई प्रवृत्तियों का विकास हुआ।

सांस्कृतिक क्षेत्र में नये मूल्यों की स्थापना हुई। विकास-युग में जो मूल्य थे वे गाँधीवाद और बौद्ध धर्म की करुणा से प्रभावित थे। इस युग में मानववाद (Humanism) ने पूरे जीवन-दर्शन को प्रभावित किया। अब पुरातन अन्ध-विश्वास और समाजिक कुरीतियों की समस्या प्रधान न रही। अब समस्या का रूप व्यक्तिपरक और भावपरक हो गया। जैनेन्द्र कुमार ने नैतिक मान्यताओं के आधार पर अपने चरित्र खड़े किये। 'अज्ञेय' और इलाचन्द्र जोशी के पात्र अहं और विद्रोह भित्ति पर खड़े हुए। 'अज्ञेय' की 'शत्रु' कहानी इसका उदाहरण है। इस युग में आकर पात्रों के मन में उठने वाला अन्तर्द्वन्द्व बाहरी घटनाओं से सम्बन्धित नहीं रहा, अब अवचेतन मन की अन्तर प्रवृत्तियाँ ही उसके बाह्य कार्य-व्यापारों का संचालन करने लगी। जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और विश्लेषण को प्रधानता दी। 'अज्ञेय'

ने अपने चरित्रो मे वैयक्तिकता को अधिक प्रश्रय दिया। फ्रायड, युग और एडलर से प्रभावित होकर इस युग का कहानीकार विभिन्न सकेतों और प्रतीको के सहारे, चरित्रो के अन्तर्मन की थाह लेने में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहा। विष्णु प्रभाकर रचित 'द्वन्द्व' कहानी इसी का एक नमूना है।

सामाजिक क्षेत्र मे मार्क्स की विचारधारा ने भौतिक जीवन की महत्ता प्रतिपादित की। उसके अनुसार समाज दो विरोधी वर्गों में बँटा हुआ है। पूँजीपति और श्रमिक। दोनो के स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। दोनो मे सघर्ष अनिवार्य है। इस सघर्ष को वर्ग-सघर्ष की सज्ञा दी गई। मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित होकर हिन्दी में कई प्रगतिवादी कहानीकार सामने आये, जिन्होने इस वर्ग-सघर्ष को अपनी कहानियों में चित्रित किया। इन कहानीकारों ने अन्ध धार्मिक विश्वासों, परम्परागत सडे गले मूल्यो और समाज मे निरन्तर चलते रहने वाले शोषण चक्र का बड़ी तीव्रता के साथ विरोध और खण्डन किया। उन्होंने व्यक्ति के रूप मे न देखकर, समाज के माध्यम से देखा और पूरे इतिहास का आर्थिक दृष्टि से मूल्याकन कर प्रतिपादित किया कि उत्पादन के साधन जब तक उत्पादनकर्ता के हाथो मे न आयेंगे तब तक सघर्ष जारी रहेगा।

इस सघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति यशपाल की कहानियों मे देखने को मिलती है। उनकी कहानियों में समाज के शोषक और शोषित दोनो वर्ग चित्रित हुये हैं। अन्य कहानीकारों में रागेय राघव, राहुल सांकृत्यायन, पहाड़ी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग में आकर कहानी की शिल्प-विधि में भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया। जब कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकरूपता और वर्णनात्मकता से आगे बढकर मानसिक सूत्रो, मनोवैज्ञानिक चक्रों, सूक्ष्म घटनाओं और मनोद्वेगो के माध्यम से निर्मित होने लगा। चरित्र-विश्लेषण मे भी नये नये प्रसाधन प्रयुक्त होने लगे, यथा आत्म-विश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विज्ञप्ति आदि। शैली की दृष्टि से कहानी चित्रकला के निकट

आ गई। इसमें रेखाचित्र, व्यंग्य चित्र, संस्मरण, सूचनिका (रिपोर्ताज) और केमरा शैली के विविध प्रयोग हुये।

(४) नवीन युग.—पिछले महायुद्ध के पश्चात् जो मनःस्थितियाँ पैदा हुईं और आजादी मिलते ही जो भयंकर रक्तपात और संहार हुआ, उससे संवेदनशील व्यक्ति तिलमला उठा। उसने अपने सामने ही सदियों मे बने व करोडो जिन्दगियो द्वारा बनाये गये विश्वासों को ध्वंस होते हुये देखा तो शाश्वत मूल्यों जैसी किसी धारणा मे उनका विश्वास न रहा। इधर ज्ञान-विज्ञान और यांत्रिक प्रगति ने पुराने मूल्यो को तो विघटित कर दिया पर नये मूल्यो की स्थापना मे उसे सफलता न मिल सकी। राजनीतिक शक्तियो, खोखली नैतिकताओ और दम तोड़ आर्थिक स्थितियों ने व्यक्ति को जैसे मशीन का जड अंग बना दिया। वह समाज से टूट कर बेगाना और अजनबी बन गया।

नवीन युग की कहानियो मे व्यक्ति के इस तनाव, अजनबीपन और युग के आंतरिक दर्द को पूरी प्रामाणिकता और सचाई के साथ चित्रित किया गया है। पहले के कहानीकारो के पास अपने कुछ निश्चित विश्वास होते थे। उन्ही का प्रतिपादन करने के लिए वे कथानक गढ लिया करते थे। उनकी कहानियो के साथ कोई न कोई काल्पनिक तत्व जुड़ा रहता था। यथार्थवादी कहानीकार भी वास्तविकता का वातावरण इस प्रकार चित्रित करते थे कि वह सच्चा लगने लगे। नये कहानीकार ने इस काल्पनिक तत्व को उखाड़ कर फेंक दिया है। वह साहित्य के चश्मे से जीवन को नही देखता है, वरन् जीवन के माध्यम से साहित्य की सृष्टि करता चलता है। वह कहानी से यथार्थ-बोध की ओर नही जाता वरन् यथार्थ से कहानी की ओर अग्रसर होता है। वह पात्र को परिवेश सहित प्रस्तुत न कर परिवेश में ही अन्वेषित करने का प्रयत्न करता है। पहले का कहानीकार कहानी को वह अंत देता था जिसे सब चाहते थे पर स्वयं जिसे प्राप्त करना मुश्किल होता था। नया कहानीकार किसी जीवन सत्य या दर्शन को पाठक तक पहुँचाता नही, वरन उसमें पाठक की सहभागिता

के माध्यम से वही अनुभूति और बोध जागृत करता है। अब पात्र लेखक की कठ-पुतली नहीं है। वह अपनी बात का स्वय गवाह है। नयी कहानी मे चरित्र की निजता को सम्यक् आदर दिया गया है, इसीलिए वह अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय हो पायी है।

आज की कहानी मे किसी घटना का होना आवश्यक नही है। कार्य कारण सम्बन्ध वर्णन की अनिवार्यता भी अब समाप्त हो गई है। आज की कहानी भोगे हुये जीवन की सवेदनात्मक अभिव्यक्ति है।

नवीन युग की कहानियो की एक प्रमुख प्रवृत्ति लोक जीवन को उसके अंचल विशेष मे चित्रित करने की है। शिव प्रसाद सिंह कृत 'दीदी माँ,' मार्कण्डेय कृत 'गुलरा के बाबा' फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'लाल पान की बेगम' और 'तीसरी कसम' कहानियाँ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

यान्त्रिक प्रगति से आविर्भूत चीख और संत्रास (Terror) को व्यापक फलक पर चित्रित करने में नये कहानीकार विशेष सफल रहे हैं। अमृत लाल नागर कृत 'एटम बम', निर्मल वर्मा कृत 'लंदन की एक रात', मोहन राकेश कृत 'मलवे का मालिक' इसी प्रकार की कहानियाँ है।

भागते हुये विविध मूडों (Moods) और क्षणों को पकड़कर इधर काफी कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमे परम्परागत कहानीपन नही है। नरेश मेहता, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय इस दिशा मे उल्लेखनीय कहानीकार है। श्रीकान्त वर्मा की कहानियो मे कही आत्म-ग्लानि है तो कही झल्लाहट, कही वेहद वेचैनी है तो कही क्षोभ। 'झाड़ी' सग्रह की अधिकाश कहानियाँ ऐसी ही है।

नवीन युग के अन्य उल्लेखनीय कहानीकारो मे सर्वश्री धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, कुलभूषण, रमेश बक्षी, मन्नू भडारी, शैलेश मटियानी, भीष्म साहनी, ज्ञानरजन आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस युग मे अनेक प्रभावशाली कहानी लेखिकाएँ भी उभर कर आयी हैं। इनमे सत्यवती मल्लिक, मन्न भडारी, उषा प्रियंवदा,

रजनी पनिकर, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, शिवानी आदि प्रमुख हैं।

भाषा के क्षेत्र में नयी कहानी की देन को नही भुलाया जा सकता। नयी कहानी ने 'भाषा की जड़ता को तोडकर, समय के विस्तार मे जी रहे मनुष्य की बोली मे अपने नये अर्थों की तलाश की है। विभिन्न प्रदेशों, अचलो और महानगरो मे बिखरी हुई भाषा की तलाश कर नयी कहानी ने भाषा की छिपी हुई ऊर्जा शक्ति को प्रकाशित किया है'।

नयी कहानी की शक्ति और सीमाओ का मूल्याकन करते हुये एक आलोचक ने लिखा है, "नयी कहानी मे आज का युग बोध है, सामाजिक जीवन का पूर्ण वैविध्य है, आज की अति आधुनिक अनुभूति है। उसमे लेखक की वैयक्तिकता, अहमन्यता तो मिलती ही है, व्यक्ति की अनुभूतियों मे गहराई तक जाने की प्रवृत्ति है, एक बौद्धिक अपील भी है। यद्यपि वह सब्जेक्टिव होकर कहानी लिखता है पर मूलतः वह मीडियम का ही कार्य करता है— युग की सामान्य प्रवृतियों को अपने माध्यम से व्यक्त करना चाहता है। कभी-कभी वह एक पग और भी आगे बढ़ जाता है और जाति, धर्म, राष्ट्र आदि के सकुचित घेरो को तोड़कर वह मनुष्य को मनुष्य के रूप में, उसके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धो को मनोवैज्ञानिक गहराई के साथ उपस्थित करता है। वह जीवन को उसकी सश्लिष्टता तथा जटिलता मे पकड़ पाने और उसे आकार देने को व्याकुल है। अतः आज की कहानी आधुनिक जीवन की बड़ी ही तीखी यथार्थ चेतना है, क्योंकि कहानीकार जीवन के प्रति ईमानदार है। पर जहाँ कही असामान्य व्यक्ति की असामान्य मानसिक स्थिति के विश्लेषण की ओर उन्मुख हुआ है, मनोविश्लेषण के चक्कर मे पड़कर केवल कुंठाओं, पराजय और मौत की बात करता है। व्यक्तित्व की एकातिकता के चक्कर मे पड़ा है, वही उसकी कहानी लोक-संवेद्य कला बनने की जगह असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन बन गई है।

हिन्दी भाषा के अतिरिक्त बंगला और मराठी भाषाओ मे भी

कथाकारों ने सशक्त कहानियाँ लिखी हैं। नमूने के लिये दो कहानियाँ इस संकलन मे जोड़ी गई हैं जिससे राष्ट्रीय भावना एवं भावात्मक एकता को बल मिलेगा और अन्य प्रादेशिक भाषाओं को पढ़ने समझने और उनसे अपनापन स्थापित करने का सुयोग प्राप्त होगा।

: १ :

बड़े भाई साहब

प्रेमचन्द

जीवन-रेखा :

प्रेमचन्द का जन्म सन् १८८० ई० मे वाराणसी मे पाडेपुर ग्राम के एक छोटे से लमही नामक पुरवा मे एक कुलीन मध्यम श्रेणी के कायस्थ परिवार मे हुआ। परिवार की आर्थिक दशा शोचनीय थी। प्रेमचन्द का घर का नाम धनपतराय था। इनके चाचा इनको नवावराय नाम से पुकारा करते थे। इनकी वाल्यावस्था वडे कष्ट मे व्यतीत हुई। जब ये ६ वर्ष के थे तभी इनकी माता का देहान्त हो गया और १४ वर्ष की अवस्था मे पिता का साया भी सर से उठ गया। जीवन मे अनेक संघर्षों से जूझते हुये किसी तरह प्राइवेट तौर पर पढ कर इन्होने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। मैट्रिक के वाद ही ये एक छोटे से स्कूल मे १८) रु० मासिक पर अध्यापक नियुक्त हुये और प्रगति करते-करते वे डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स के पद पर पहुँच गये। वारह वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के वाद सन् १९२० में गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन की राष्ट्रीय विचार-धारा से प्रभावित होकर इन्होने सरकारी नौकरी को तिलाजली दे दी और देश-सेवा तथा साहित्य-साधना को अपना लक्ष्य वना लिया। लगभग तीस वर्ष तक अथक परिश्रम द्वारा साहित्य का निर्माण करते हुये सन १९३६ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

साहित्य-सर्जना :

प्रेमचन्द ने प्रारम्भ मे उर्दू मे लिखना शुरू किया। उनकी प्रथम उर्दू कहानी 'संसार का अनमोल रत्न' १९०७ ई० मे 'जमाना' में छपी। सन १९०१ मे १९१५ तक ये वरावर उर्दू में लिखते रहे। 'सोजेवतन' आदि इनके कई सग्रह उर्दू में प्रकाशित हुये। सन १९१६

से प्रेमचन्द श्री मन्नन द्विवेदी गजपुरी की प्रेरणा से हिन्दी में लिखने लगे। 'सप्तसरोज', इनका प्रथम हिन्दी-कहानी संग्रह है। इन्होंने हिन्दी में लगभग ३०० कहानियों की रचना की।

इनकी प्रकाशित रचनाओं में 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गबन', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गोदान', 'मंगलसूत्र', आदि उपन्यास हैं। 'सप्तसरोज', 'प्रेमद्वादशी', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम-प्रसून', 'नवनिधि', 'प्रेमप्रमोद' आदि उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं। 'कर्बला', 'प्रेम की वेदी' और 'संग्राम' नाट्य-कृतियाँ हैं। 'कुछ विचार' और 'विविध प्रसंग' (३ भाग) महत्वपूर्ण निबन्ध-संकलन हैं।

कहानी-कला :

प्रेमचन्द युगान्तरकारी परिवर्तन लेकर हिन्दी कथा-क्षेत्र में उतरे। इन्होंने कहानी को एक साधारण मनोरंजक शैली से ऊपर उठाकर जीवन संघर्षों को अभिव्यक्त करने वाली एक प्रभावशाली विधा के रूप मे देखा।

हिन्दी कहानी-क्षेत्र मे चरित्र प्रधान कहानियो का वास्तविक आरम्भ प्रेमचन्द के द्वारा ही हुआ। प्रारम्भिक कहानियों में चरित्र-चित्रण उतना नहीं है जितना आचरण का प्रदर्शन है। यहाँ कहानी की भाव-भूमि लम्बी चौड़ी है। इसमें व्याख्या का अंश अधिक, सवेदना का अंश बहुत ही कम है। विकासकालीन कहानियो में आकार के लाघव की प्रवृत्ति है। यहाँ कहानी का आधार कोई न कोई दार्शनिक तत्व अथवा सामाजिक विवेचन हो गया है। अब प्रेमचन्द का आदर्शवाद यथार्थोन्मुख हो गया।

उत्कर्ष काल की कहानियो का धरातल एकदम बदल गया। अब चरित्र-विश्लेषण का आधार कार्य और आचरण नही रहे वरन् मनोवृत्ति और मनोविज्ञान हो गये। अब उसमे व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक है। कई घटनाओं, कई रसों और कई चरित्रों का समावेश रुक गया। अब कहानियाँ घटनाओं के चक्रो में नही घूमती वरन् पात्रों

के मनोविश्लेषण के लिये घटनाओ की सृष्टि स्वतः होती चलती है। अब कहानियाँ समस्या के विभिन्न प्रसंगों और साकेतिक संवेदनाओं को समेटती हुई चलती है।

प्रेमचन्द की भाषा सरल, प्रभावमयी और मुहावरेदार है। व्यर्थ के मायाजाल मे वे कभी नही फँसे। इनकी उपमायें दैनिक जीवन से ली गई हैं। स्वाभाविकता और सरसता इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

बड़े भाई साहब :

प्रस्तुत कहानी मे दो भाईयो की मनःस्थिति का बड़ा ही सुन्दर चित्र खीचा गया है। छोटा भाई उम्र में छोटा होते हुये भी पढ़ने में तेज है। बड़ा भाई पढ़ने में पीछे होते हुये भी अपने बड़प्पन के अधिकार को खोना नहीं चाहता। अनुशासन मे विश्वास रखने वाले बड़े भाई का स्नेही हृदय पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। छोटे भाई के प्रति अपने कर्त्तव्य की जागरूकता ने उसके चरित्र को ऊँचा उठा दिया है।

: १ :

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र मे पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले मे वे जल्दबाजी से काम लेना पसन्द न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पायेदार बने?

मै छोटा था, वे बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की थी, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा और जन्म-सिद्ध अधिकार था मेरी शालीनता इसी मे थी कि उनके हुक्म को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते। और शायद दिमाग को आराम देने के लिये कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियो पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार बार सुन्दर अक्षरो में नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामजस्य। मसलन् एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयो, दरअसल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घण्टे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने बहुत चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ, लेकिन असफल रहा। और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वे नवी जमात में थे, मैं पाँचवी मे। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिये 'छोटा मुँह बड़ी बात' थी।

मेरा जी पढ़ने मे बिल्कुल न लगता था। एक घण्टा भी किताब लेकर बैठना पहाड था। मौका पाते ही हॉस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता, और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी कागज की तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया, तो पूछना ही क्या। कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुये मोटरकार का आनन्द उठा रहे है, लेकिन कमरे मे आते ही भाई साहब का वह रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता-'कहाँ थे' ? हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में हमेशा पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मेरे मुँह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिये इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुये शब्दो मे मेरा सत्कार करें।

'इस तरह अँग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आयेगा। अँग्रेजी पढ़ना कोई हँसी-खेल नही है कि जो चाहे पढ ले, नही ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अँग्रेजी के विद्वान हो जाते । यहाँ दिन-रात आँखें फोड़नी पड़ती है, और खून जलाना पडता है, तब कही यह विद्या आती है। और आती क्या है, हाँ कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान् भी शुद्ध अँग्रेजी नही लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, यह तुम आँखों से देखते हो, अगर नहीं देखते हो तो यह तुम्हारी आंखों का कुसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कुसूर है। इतने मेले-तमाशे होते है, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है ? रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते है। मैं पास नही फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ। उस पर भी एक एक दरजे मे दो-दो तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद मे वक्त गंवाकर पास हो जाओगे। मुझे तो दो ही तीन साल लगते है, तुम उम्र भर इसी

दरजे मे पड़े सडते रहोगे ? अगर तुम्हें इस तरह उमर गवानी है, तो बेहतर है घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो ?

मैं यह लताड सुनकर आँसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे। भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत टूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा मे जरा देर के लिये मैं सोचने लगता—क्यो न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमे हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूँ। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था, लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था, लेकिन घण्टे-दो-घण्टे बाद निराशा के बादल फट जाते और इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूँगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाये, कोई स्कीम तैयार किये, काम कैसे शुरू करूँ ? टाइम-टेबिल मे खेल-कूद की मद बिलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुँह हाथ धो नास्ता कर, पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अँग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढे नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आध घण्टा आराम, चार से पाँच तक भूगोल, पाँच से छः तक ग्रामर, आधा घण्टा होस्टल के सामने ही टहलना, साढ़े छः से सात तक अँग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन कर के आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध-विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हल्के-हल्के झोके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वे दाँव-घात, वालीबाल की वह तेजी और

फुरती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान लेवा टाइम-टेबिल, वह आँख-फोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फ़जीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आँखों से दूर रहने की चेष्टा करता, कमरे में इस तरह दबे पाँव जाता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नज़र मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बन्धन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियाँ खा कर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर पाता।

: २ :

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गये, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच में केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिये, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अव्वल भी हूँ, लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हाँ, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा। भाई साहब का वह रोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फ़जीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया—उनकी सहज बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे को भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानो

तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े—देखता हूँ, इस साल पास हो गये और दरजे में अव्वल आ गये तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाई जान, घमंड तो बड़े-बड़ों का नही रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है? इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया। या यों ही पढ़ गये? महज इम्तहान पास कर लेना कोई बड़ी चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भू-मण्डल का स्वामी था। ऐसे राजाओं को चक्रवर्ती कहते हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे, मगर उसका अन्त क्या हुआ? घमण्ड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी और जो कुकर्म चाहे करे, पर अभिमान न करे, इतराये नही। अभिमान किया और दीन दुनिया दोनों से गया। शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अभिमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढकर सच्चा भक्त कोई है ही नही। अन्त में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख माँग-माँग कर मर गया। तुमने तो अभी एक दरजा पास किया है, और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नही पास हुये, अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं लग सकती। कभी कभी गुल्ली-डण्डे से भी अन्धा-चोट निशान पड जाता है। इससे कोई सफल खिलाड़ी नही हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है जिसका कोई निशाना खाली न जाय। मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतो पसीना आ जायगा, जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे, इंगलिस्तान का इतिहास पढना पड़ेगा। बादशाहो के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे है। कौन-सा काण्ड किस हेनरी

के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो ! हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब ! सफाचट। सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी । हो किस खयाल मे । दरजनों जेम्स हुये हैं, दरजनों विलियम, कोड़ियो चार्ल्स ! दिमाग चक्कर खाने लगता है । आँधी-रोग हो जाता है । इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे । एक ही नाम के पीछे दोयम, सोयम, चहारुम, पंचम लगाते चले गये। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता । और जामेट्री, तो बस खुदा की पनाह ! अ, ब, ज की जगह अ, ज, ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गये । कोई इन निर्दयी मुम्तहिनों से नही पूछता कि आखिर अ, ब, ज और अ, ज, ब मे क्या फर्क है, और व्यर्थ की बात के लिये क्यों छात्रों का खून करते हो ? दाल-भात-रोटी खाई या भात-दाल-रोटी खाई, इसमें क्या रक्खा है, मगर इन परीक्षको को क्या परवाह ? वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तकों मे लिखा है । चाहते है कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है । और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढाने से फायदा ? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगुना होगा । पूछिये इससे प्रयोजन ? दुगुना नही चौगुना हो जाय या आधा ही रहे मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है तो यह सब खुराफात याद रखनी पड़ेगी । कह दिया—'समय की पाबन्दी' पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नो से कम न हो । अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ मे लिये, उसके नाम को रोइये । कौन नही जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है, इससे आदमी के जीवन मे संयम आ जाता है । लेकिन जरा सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें ? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्नों मे लिखने की जरूरत ? मैं तो उसे हिमाकत कहता हूँ । यह तो समय की किफायत नही, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ मे किसी बात को ठूँस दिया जाय। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले । मगर नही, आपको चार पन्ने रंगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिये । और पन्ने भी पूरे फुलस्केप

प्राकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नही तो और क्या है ? अनर्थ तो यह कि कहा जाता है संक्षेप मे लिखो। समय की पावन्दी पर संक्षेप में एक निवन्ध लिखो, जो चार पन्ने से कम न हो। ठीक। संक्षेप में तो चार पन्ने हुये, नही शायद सौ-दौ-सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िये और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नही ? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज़ भी नही। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे मे आवोगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे मे अव्वल आ गये हो, तो जमीन पर पाँव नही रखते। इसलिये मेरा कहना मानिये। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे कही ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बाँधिये, नही पछताइएगा।

स्कूल का समय निकट था, नही ईश्वर जाने यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिये जायँ। भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खीचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़ कर घर नहीं भागा यही ताज्जुब है, लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों से मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम, बस इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाय और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन काटने लगा।

: ३ :

फिर सालाना इम्तहान हुआ और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गये। मैंने बहुत मेहनत नही की पर न जाने कैसे दरजे मे अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ।

भाई साहब ने प्राणातक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गये थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले, मुद्रा कान्ति-हीन हो गई थी। मगर बेचारे फेल हो गये। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया तो वे रो पडे और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने की खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले।

मेरे और भाई साहब के बीच अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन मे एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जायें, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वे मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डाँटते है। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरो से।

अब की भाई साहब बहुत कुछ नर्म पड़ गये थे। कई बार मुझे डाँटने का अवसर पाकर भी उन्होने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डाँटने का अधिकार उन्हे नही रहा, या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छन्दता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास हो ही जाऊँगा, पढ़ूँ या न पढ़ूँ मेरी तकदीर बलवान है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा बहुत पढ लिया करता था, वह भी बन्द हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतगबाजी ही की भेट होता था; फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचा कर कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बाँधना, पतंग-टूर्नामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ सब गुप्त रूप से हल की जाती थी। मैं भाई साहब को यह सन्देह न करने देना

चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है ।

एक दिन संध्या समय, होस्टल से दूर, मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था । आँखे आसमान की ओर थी और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मन्द गति से झूमता पतन की ओर चला जा रहा हो, मानों कोई आत्मा स्वर्ग से निकल कर विरक्त मनसे नये संस्कार ग्रहण करने जा रही हो । बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झाडदार बाँस लिये उसका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी । किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी । सभी मानों उस पतंग के साथ आकाश मे उड रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटर कारें है, न ट्राम, न गाड़ियाँ ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे । उन्होंने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्र भाव से बोले—इन बाजारी लौंडों के साथ धेले के कनकौए के लिये दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम्हे इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमाअत मे नही हो, वल्कि आठवीं जमाअत में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो । आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का ख्याल करना चाहिये । एक जमाना था कि लोग आठवाँ दरजा पास कर नायब तहसीलदार हो जाते थे । मैं कितने ही मिडिलचियों को जानता हूँ जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिन्टेण्डेन्ट हैं । कितने ही आठवी जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार पत्रों के सम्पादक हैं । बड़े-बड़े विद्वान् उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे मे आकर बाजारी लौंडो के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो ? मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है ! तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं, लेकिन वह जहन किस काम का, जो हमारे आत्म-गौरव की हत्या कर डाले ? तुम अपने दिल मे समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दरजा नीचे हूँ, और

तुम्हे मुझको कुछ कहने का हक नही है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत मे आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल रहा, तो नि.सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे, और शायद एक साल बाद मुझसे आगे भी निकल जाओ—लेकिन मुझमें और तुममे जो पाँच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या खुदा भी नही मिटा सकते। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नही कर सकते, चाहे तुम एम० ए० और डी० फिल० और डी० लिट्० ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढने से नही आती, दुनिया देखने मे आती है। हमारी अम्माँ ने कोई दरजा पास नही किया, और दादा भी शायद पाँचवी-छठी जमाअत के आगे, नहीं गये; लेकिन हम दोनो चाहे सारी दुनियाँ की विद्या पढ़ ले, अम्मा और दादा को हमे समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिये नही कि वे हमारे जन्मदाता है; बल्कि इसलिये कि उन्हे दुनियाँ का हमसे ज्यादा तजरबा है और रहेगा। अमेरिका मे किस तरह की राज्य-व्यवस्था है, और आठवे हेनरी ने कितने व्याह किये और आकाश मे कितने नक्षत्र है, यह बाते चाहे उन्हें न मालूम हों, लेकिन हजारो ऐसी बाते है, जिनका ज्ञान उन्हे हम तुमसे ज्यादा है। दैव न करे, आज मे बीमार हो जाऊँ, तो तुम्हारे हाथ-पाँव फूल जायेंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह दादा हो, तो किसी को तार न दे, न घबराये, न बदहवास हो। पहले खुद मरज पहचान कर इलाज करेगे, उसमे सफल न हुये तो किसी डाक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीना भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते है, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते है, और फिर पैसे-पैसे को मुहताज हो जाते हैं। नाश्ता बन्द हो जाता है, धोबी और नाई से मुँह चुराना पडता है, लेकिन जितना हम और तुम आज खर्च

कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हैडमास्टर साहब को ही देखो। एम० ए० हैं कि नही और यहाँ के एम० ए० नही, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपये पाते है; लेकिन उनके घर का इन्तजाम कौन करता है ? उनकी बूढी माँ। हैडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इन्तजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माता जी ने प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह न चलने पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखा कर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही है…………।

मैं उनकी इस नई युक्ति से नत-मस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आँखों से कहा—हरगिज नही। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिल्कुल सच है और आपको उसके कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले—मैं कनकौए उड़ाने को मना नही करता। मेरा भी जी ललचाता है, लेकिन करूँ क्या; खुद बेराह चलूँ, तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ। यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लम्बे हैं ही। उछल कर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं भी पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. फटकार और घुड़कियाँ खाकर भी खेलकूद का तिरस्कार न करना छोटे भाई की कौनसी विशेषता प्रकट करता है ?

(क) ढीठता
(ख) निश्चिन्तता
(ग) उद्दण्डता
(घ) चंचलता
(च) लापरवाही ( )

२. 'मैं कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा भी जी ललचाता है, लेकिन करूँ क्या, खुद बेराह चलूँ तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ।' बड़े भाई साहब का यह कथन उनकी किस भावना को प्रदर्शित करता है ?

(क) स्वाभिमान
(ख) उत्तरदायित्व
(ग) आत्मतोष
(घ) बन्धन
(च) सहानुभूति ( )

३. दादा की गाढ़ी कमाई को क्यों बरबाद करते हो, कहने से बड़े भाई साहब का क्या आशय था ?

४. वह कौनसी कुटिल भावना थी जो छोटे भाई के मन में बड़े भाई साहब के दूसरी बार फेल होने पर पैदा हुई ?

५. आपकी दृष्टि में छोटे भाई के कक्षा में प्रथम आने के क्या क्या कारण हो सकते हैं ?

६. 'प्रस्तुत कहानी में आधुनिक शिक्षा पर व्यंग्य किया गया है।' ५० शब्दों में इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

७. आपके छोटे भाई के घर पर न पढ़ने और इधर-उधर खेलते-रहने की शिकायत, पत्र लिखकर उसके विद्यालय के प्रधानाध्यापक को

भेजिए।

८. बड़े और छोटे भाई की चारित्रिक असमानताओं को निम्न तालिका में अंकित कीजिए :—

बड़ा भाई	छोटा भाई
१	१
२	२
३	३
४	४
५	५

९. 'समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती दुनिया देखने से आती है।' इस उक्ति पर अपने विचार १०० शब्दों में लिखिये।

१०. 'भाई साहब के लिये इसके सिवा और कोई इलाज न था कि स्नेह और रोष से मिले हुये शब्दों से मेरा सत्कार करें।' यह स्नेह क्यों और रोष किस बात का होता था ?

११. यदि भाई साहब तीसरे वर्ष भी असफल हो जाते तो उनका व्यवहार छोटे भाई के प्रति कैसा होता ?

१२. नीचे लिखे मुहावरों का अर्थ बताइये और इनका प्रयोग अपने वाक्यों में कीजिए :—

हाथ पाँव फूल जाना, फ़ज़ीहत करना, ज़लील होना, खून करना।

: २ :

ममता

जयशंकर प्रसाद

जीवन रेखा :

जयशकर प्रसाद का जन्म सन् १८८९ ई० में 'सूँघनी साहू' नाम से सुविख्यात काशी के एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार में हुआ। प्रसाद जी का जीवन बड़े वैभवपूर्ण वातावरण मे बीता। बारह वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु हो गयी अतः इनके बड़े भाई साहब शम्भूरत्न ने इनकी पढ़ाई की उचित व्यवस्था घर पर ही कर दी। घर पर ही प्रसाद जी ने हिन्दी, अँग्रेजी, सस्कृत, उर्दू, बगला, फारसी आदि भाषाओं का तथा वेद, पुराण, उपनिषद् स्मृति, भारतीय सस्कृति, इतिहास, दर्शन, पुरातत्व आदि विषयो का गम्भीर अध्ययन किया। बड़े भाई की मृत्यु के बाद १७ वर्ष की अवस्था में ही गृहस्थी का भार इनके कन्धो पर आ पड़ा। प्रतिभाशाली होने के कारण पैतृक व्यवसाय और घर की सम्पूर्ण जिम्मेदारी संभालते हुये भी उन्होंने अपनी साहित्यिक अभिरुचि मे किसी प्रकार की कमी नही आने दी। सन् १९३७ ई० में केवल ४८ वर्ष की आयु में ही इनका स्वर्गवास हो गया।

साहित्य सर्जना :

प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। साहित्य की प्रत्येक विधा में इन्होंने अपनी लेखनी का जौहर दिखलाया। कविता के क्षेत्र मे ये छायावाद के प्रतिष्ठापक बने और 'कामायनी' जैसा महाकाव्य रचकर ऐतिहासिक विकासवाद और मन की सूक्ष्म वृत्तियों का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत किया। इनके ऐतिहासिक नाटकों मे प्राचीन भारतीय संस्कृति और वर्तमान राष्ट्रीय विचारधारा का सुन्दर निदर्शन है। इनके उपन्यासों

में सामाजिक विद्रूपता और विकृति पूर्ण यथार्थता के साथ चित्रित हुई है। इनकी कहानियों में मानव-मन का संघर्ष इस प्रकार चित्रित किया गया है कि वह 'क्षुद्र' से आगे बढ़कर 'महत्' के प्रति समर्पित होता दिखाई देता है।

इनकी प्रकाशित रचनाओं मे 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर', 'झरना', आदि महत्वपूर्ण काव्य कृतियाँ हैं। 'चन्द्रगुप्त',' स्कन्दगुप्त', 'अजातशत्रु', 'राज्य श्री', 'ध्रुवस्वामिनी', आदि प्रसिद्ध नाटक है। 'कंकाल', 'तितली', तथा 'इरावती' (अपूर्ण), उपन्यास हैं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'इन्द्रजाल', और 'आँधी' उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं।

कहानी-कला :

इनकी अधिकाश कहानियाँ ऐतिहासिक या काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक कहानियो के कथानक मे एकसूत्रता तथा विकास के आदि, मध्य और अन्त तीनो भाग मिलते हैं। काल्पनिक कहानियाँ रेखाचित्र और गद्यगीत के निकट आ गई है। विषय की दृष्टि से प्रसाद जी कभी सस्ते रोमांस तथा स्थूल समस्या सम्बन्धी कथानकों मे नही रमे। उन्होने प्रेम तथा कर्त्तव्य के द्वन्द्व को बड़े मनोवैज्ञानिक एवं नैसर्गिक स्वस्थ वातावरण में प्रस्तुत किया है।

इनकी कहानियो के पात्र अत्यन्त कारुणिक, भावुक और प्रेमी है। वे अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों के प्रतीक होते हुये भी प्रचलित सामाजिक बन्धनों और मान्यताओ के प्रति विद्रोही हैं।

वातावरण-निर्माण में प्रसाद जी सिद्धहस्त हैं। मूल भाव, समस्या और पात्रानुकूल वातावरण चित्रित कर वे कहानी को अधिक भावप्रवण और सकेतात्मक बना देते हैं। संस्कृत गर्भित भाषा में भी अपूर्व सरसता और माधुर्य भर कर वे पाठक को रसविभोर कर देते हैं।

ममता (ऐतिहासिक) :

ममता एक प्रकार से ऐतिहासिक कहानी कही जा सकती है। इसमें

नारी जीवन के शौर्य और साहस का वर्णन है। ममता विधवा है। उसमें चारित्रिक दृढ़ता है। उसके चरित्र से मानवीय संवेदना और प्रेम का सफल चित्रण हुआ है। कहानी मे ममता की चारित्रिक दृढ़ता, उसके सतित्व, देश-प्रेम तथा त्याग का चित्रण है। सवाद सजीव, नाटकीय तथा प्रभावशाली हैं। कहानी में वाह्य एवं अन्तर्द्वन्द्व हैं। शेरशाह, हुमायूँ, चौसा का युद्ध एव रोहिताश्वगढ़ का वर्णन आने के कारण इसमे ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि बन गई है। कहानी के अन्त मे पाठक के मन में करुणा के भाव उद्वेलित हो जाते हैं। यह कहानी की सफलता का परिचायक है।

: १ :

रोहताश्व दुर्ग के एक प्रकोष्ठ मे बैठी हुई युवती ममता शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड रहा था। मन में वेदना, मस्तक मे आँधी, आँखों मे पानी की बरसात को लिये, वह सुख के कण्टक-शयन में विकल थी। वह रोहताश्व-दुर्गपति के मत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिये कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी—हिन्दू विधवा ससार में सबसे तुच्छ और निराश्रय प्राणी है, तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था।

चूडामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ मे प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कलनाद मे, अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूडामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिये क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौट कर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर रात बीत जाने पर फिर वे ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुये थे। कितने ही मनुष्यो के पद-शब्द सुन ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का सकेत किया। अनुचर थाल रख कर चले गये।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिताजी ?"

"तेरे लिये बेटी, उपहार है।" कह कर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहरी संध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

"इतना स्वर्ण! यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता । यह तुम्हारे लिये है ।"

"तो क्या ग्रापने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ? पिताजी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं । लौटा दीजिये । पिताजी ! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहताश्व पर अधिकार कर सकता है । उस दिन मन्त्रित्व न रहेगा, तब के लिये बेटी !"

"हे भगवन् ! तब के लिये ! विपद के लिये ! इतना आयोजन ! परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी ! क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर बचा न रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असम्भव है । फेर दीजिए पिताजी, मैं काँप रही हूँ—इसकी चमक आँखों को अन्धा बना रही है ।"

"मूर्ख है"—कहकर, चूड़ामणि चले गये ।

× × × ×

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा । वह अपने को रोक न सका । उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा । पठानों ने कहा—"यह महिलाओं का अपमान करना है ।"

बात बढ़ गई । तलवारें खिंची । ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा-रानी, कोष—सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गई ममता । डोली भरे हुये पठान-सैनिक दुर्ग भर में फैल गये, पर ममता न मिली ।

: २ :

काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खण्डहर था । भग्न-चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुये प्राचीर ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी चन्द्रिका में अपने अपको शीतल कर रही थी ।

जहाँ पचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिये पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोपड़ी के दीपालोक मे एक स्त्री पाठ कर रही थी—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्युपासते······

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—"माता ! मुझे आश्रय चाहिये।"

"तुम कौन हो ?" स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा युद्ध मे शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने मे असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से ?" स्त्री ने अपने ओंठ काट लिये।

"हाँ माता !"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिविम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है। सैनिक ! मेरी कुटी में स्थान नही, जाओ, कही दूसरा आश्रय खोज लो।"

गला सूख रहा है, साथी छूट गये हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ,—इतना।" ······कहते-कहते वह व्यक्ति, धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई। उसने जल दिया, मुगल के प्राणो की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी। घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?"

स्त्री विचार कर रही थी। "मैं अकेली हूँ, मुझे तो अपने धर्म—अतिथि-देव की उपासना—का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ······ नही, नही, सब विधर्मी दया के पात्र नही। परन्तु यह तो दया नही···· कर्त्तव्य करना है। तब ?"

मुगल अपनी तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा—क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो— ?

"छल! नहीं, तब नहीं माता! जाता हूँ! तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा? जाता हूँ। भाग का खेल है।"

ममता ने मन में कहा—"यहाँ कौन दुर्ग है। यही झोंपड़ी न, जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्त्तव्य-पालन करना पड़ेगा।" वह बाहर चली गई और मुगल से बोली—जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें, आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण-कुमारी हूँ, सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ?" मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमण्डल देखा, उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

× × × ×

प्रभात में खण्डहर की संधि में ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकल कर पथिक ने कहा—"मिरजा! मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहाँ है? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग-दाव में चली गई। दिन-भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुये कह रहा है—"मिरजा! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।" इसके बाद वे चले गये।

× × × ×

चौसा के मुगल-पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गये। ममता अब

सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीत-काल का प्रभात था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिये गाँव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सबके सुख-दुःख की समभागिनी रही थी।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपडी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा—"मिरजा ने जो चित्र बना कर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिये। वह बुढिया मर गई होगी, अब किससे पूछूँ कि एक दिन शाहंशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा-"उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुक कर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शाहशाह था या साधारण मुगल, पर एक दिन इसी झोंपडी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खुदवाने के भय से भयभीत ही थी। भगवान् ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल—मैं अपने चिर विश्राम गृह में जाती हूँ।

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पखेरू अनन्त में उड़ गये।

× × × ×

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया—

"सातो देश के नरेश हुमायूँ ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मन्दिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. ममता ने अपनी कुटिया मे हुमायूँ को आश्रय क्यों दिया ?
   (क) वह हुमायूँ की दयनीय स्थिति पर द्रवित हो गई थी।
   (ख) उसको आश्रय न देने पर अपनी सुरक्षा खतरे में नजर आती थी।
   (ग) उसे आशा थी कि हुमायूँ एवज में धन देगा।
   (घ) वह अपने पुनीत कर्त्तव्य का पालन करना चाहती थी।
   (च) उसकी सहायता प्राप्त कर वह शेरशाह से बदला लेना चाहती थी। ( )

२. 'हे भगवान् ! तब के लिये ! विपद के लिये ! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी क्या भीख न मिलेगी ? फेर दीजिये पिताजी ! मैं काँप रही हूँ।'
   उक्त कथन में ममता की कौन सी मनोभावना प्रगट होती है ?
   (क) आस्तिकता
   (ख) नास्तिकता
   (ग) भाग्यवादिता
   (घ) निराशा
   (च) विरक्ति ( )

३. विधवा को भग्न-चूड़ा कहने का क्या कारण है ?

४. 'माता ! मुझे आश्रय चाहिये।' हुमायूँ के इस कथन को सुनने पर ममता के हृदय मे उस समय क्या प्रतिक्रिया हुई होगी ?

५. 'आज मंत्री के मन मे बड़ी दुश्चिन्ता थी।' यह दुश्चिन्ता किस बात के लिये थी ?

६. चूड़ामणि ने शेरशाह से रिश्वत क्यों ली ?

७. ममता एक हिन्दू विधवा है। आधुनिक भारतीय विधवा को लक्ष्य में रखकर उसकी विवशताओं का वर्णन १०० शब्दों में कीजिये।

८. प्रस्तुत कहानी मे भारतीय सस्कृति के किन आदर्शों का चित्रण हुआ है ? उत्तर ४० शब्दो मे दीजिये ।

९ 'क्या शेरशाह से ?' स्त्री ने अपने ओंठ काट लिये । ओंठ काटने के पीछे क्या रहस्य था ?

१०. ममता के हृदय मे 'दया' और 'कर्त्तव्य' का संघर्ष क्यों पैदा हुआ ?

११. 'मिरजा ! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका । उसका घर बनवा देना, क्योकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था ।'

हुमायूँ ने किस भाव से प्रेरित होकर उपयुँक्त शब्द कहे थे ?

१२. ममता का चरित्र-चित्रण निम्न बिन्दुओ के आधार पर कीजिए :—

(i) चारित्रिक दृढता, (ii) साहस (iii) त्याग

: ३ :

हार की जीत

सुदर्शन

जीवन रेखा :

श्री सुदर्शन, जिनका वास्तविक नाम बदरीनाथ था, का जन्म सन् १८९३ ई० में स्यालकोट में हुआ था। स्यालकोट वर्तमान में पाकिस्तान में चला गया है। साहित्य-जगत् में वे सुदर्शन नाम से ही जाने जाते हैं। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे साहित्य सेवा में प्रवृत्त हुये। प्रारम्भ में उन्होंने कुछ उर्दू समाचार पत्रों का सम्पादन किया। श्री प्रेमचन्द्र की तरह वे भी शुरू में उर्दू में ही लिखते रहे। बाद में हिन्दी में भी लिखने लगे।

कथा-साहित्य के अध्ययन एवं लेखन में इनकी रुचि किशोरावस्था से ही थी। उनकी प्रथम हिन्दी कहानी 'सरस्वती' पत्रिका में १९२० ई० में प्रकाशित हुई थी। इन्होंने सैकड़ों कहानियों की रचना की है। उनमें से कुछ तो बहुत ही उत्कृष्ट कहानियाँ हैं जैसे 'हार की जीत', 'राजपूतनी का प्रायश्चित', 'अलबम', 'प्रेमतरु', 'न्यायमंत्री' आदि। उन्होंने नाटक एवं एकांकियों की भी रचना की। बम्बई के सिनेमा संसार से भी उनका बड़ा सम्बन्ध रहा और चलचित्रों के लिए उन्होंने अच्छे कथानक संवाद, गीत आदि लिखे। ७१ वर्ष की अवस्था में सन १९६७ ई० में इनका देहान्त हो गया।

साहित्य सर्जना :

प्रमुख कहानी संग्रह : सुदर्शन सुधा, सुदर्शन सुमन, पुष्पलता, तीर्थयात्रा, सुप्रभात, चार कहानियाँ, गल्प मंजरी आदि।

कहानी कला :

कहानी साहित्य में श्री सुदर्शन को श्री प्रेमचन्द्र का उत्तराधिकारी मानना चाहिये । उनकी शैली में वही चमत्कार है जो प्रेमचन्द की शैली में है । सामान्यतः उनकी कहानियाँ भावना प्रधान हैं और शैली वर्णनात्मक । आपकी भाषा सरल, सुबोध, मुहावरेदार और प्रवाह पूर्ण है। उर्दू के शब्दों का प्रयोग उनकी विशेषता है । इनकी कहानियों में घटना चक्र की सहजता, चरित्र चित्रण की विविधता, सुधारवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता देखने को मिलती है । कल्पना की अपेक्षा तथ्य निरूपण की मात्रा अधिक है । वातावरण का सजीव चित्रण और सामाजिक चित्रों के लिए उनकी कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध है ।

हार की जीत :

"हार की जीत' सुदर्शन की प्रसिद्ध कहानियों में है । यह कहानी एक पंजाबी लोक कथा के आधार पर लिखी गई है। साधु बाबा भारती और डाकू खड्गसिंह के व्यवहार द्वारा मनुष्यता के एक उत्कृष्ट आदर्श को उपस्थित कर लेखक ने कहानी को मर्मस्पर्शी एवं उज्ज्वल चरित्र युक्त बना दिया है जिसका प्रभाव हृदय पर स्थायी रूप से अंकित रहता है । बाबा भारती का यह वाक्य 'इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना', 'लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे,' 'गरीब के प्रति गहरी सहानुभूति का द्योतक है । कहानी में लेखक ने जीवन दर्शन के मूक रहस्य का अनावरण बड़े ही चमत्कारिक ढग से किया है । सूक्ष्म मनोविश्लेषण एवं चरित्रगत अन्तर्द्वन्द्वों का उद्घाटन उनकी रचनाओं की अपनी विशेषता है ।

(

: १ :

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनन्द आता है, वही आनन्द बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवत्-भजन से जो समय बचता, वह घोड़े को अर्पण हो जाता। वह घोड़ा बड़ा सुन्दर था, बड़ा बलवान। इसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे सुल्तान कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते, और देख-देख कर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे प्यार, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने प्यारे को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था, रुपया, माल, असबाब, जमीन, यहाँ तक कि उन्हें नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब गाँव से बाहर एक छोटे से मन्दिर में रहते और भगवान् का भजन करते थे। परन्तु सुल्तान से बिछुड़ने की वेदना उनके लिये असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रांति-सी हो गई थी। वह उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, ऐसा चलता है, जैसे मोर घन-घटा को देखकर नाच रहा हो। गाँव के लोग इस प्रेम को देखकर चकित थे, कभी-कभी कनखियों से इशारे भी करते थे, परन्तु बाबा भारती को इसकी परवाह न थी। जब तक सध्या समय सुल्तान पर चढ़कर आठ दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हें चैन न आता।

खड्गसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुन कर कांपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिये अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा–'खड्गसिंह, क्या हाल है?'

खड्गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया–'आपकी दया है।'

'कहो, इधर कैसे आ गये ?'

'मुलतान की चाह खीच लाई ।'

'विचित्र जानवर है। देखोगे, तो प्रसन्न हो जाओगे ।'

'मैंने भी बड़ी प्रशसा सुनी है ।'

'उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी ।'

'कहते है देखने मे भी बड़ा सुन्दर है ।'

'क्या कहना । जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अकित हो जाती है ।'

'बहुत दिनों से अभिलाषा थी आज उपस्थित हो सका हूँ ।'

बाबा और खड्गसिंह दोनों अस्तबल मे पहुँचे । बाबा ने घोड़ा दिखाया घमण्ड से । खड्गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से । उसने सहस्रो घोड़े देखे थे, परन्तु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुजरा था। सोचने लगा भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड्गसिंह के पास होना चाहिये था। इस साधु को ऐसी चीजों से क्या लाभ ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा । इसके पश्चात् हृदय मे हलचल होने लगी। बालकों की सी अधीरता से बोला—'परन्तु बाबाजी, इसकी चाल न देखी, तो क्या देखा ?'

: २ :

बाबा जी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशसा दूसरे के मुख से सुनने के लिये उनका हृदय भी अधीर हो गया। घोड़े को खोलकर बाहर लाये, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचककर सवार हो गये। घोड़ा वायुवेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर, उसकी गति देख कर खड्गसिंह के हृदय पर साँप सा लोट गया। वह डाकू था। उसके पास बाहुबल था, और आदमी थे। जाते जाते उसने कहा—'बाबाजी, मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा ।'

बाबा भारती डर गये। अब उन्हे रात को नीद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड्गसिंह का भय

लगा रहता परन्तु कई मास बीत गये, और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ लापरवाह हो गये। और, इस भय को स्वप्न के भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुल्तान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी रंग को और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज आई—'ओ बाबा! इस कंगले की भी बात सुनते जाना।'

आवाज में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को थाम लिया। देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले—'क्यों तुम्हें क्या कष्ट है?'

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा—'बाबा! मैं दुखिया हूँ। मुझ पर दया करो। रामवाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो, परमात्मा भला करेगा।'

'वहाँ तुम्हारा कौन है?'

'दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।'

बाबा भारती ने घोड़े से उतर कर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया, और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।

सहसा उन्हें एक झटका सा लगा, और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तन कर बैठा, घोड़े को दौड़ाये लिये जा रहा है। उनके मुख से भय, और निराशा से मिली हुई चीख निकल गई। यह अपाहिज खड्गसिंह डाकू था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे, और इसके पश्चात् कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले—'जरा ठहर जाओ।'

खड्गसिंह ने यह आवाज सुनकर घोड़ा रोक लिया, और उसकी

गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुये कहा—'बाबाजी, घोड़ा अब न दूँगा।'

'परन्तु एक बात सुनते जाओ।'

खड्गसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा, जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है, और कहा—'यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका। मैं तुमसे इसे वापस करने के लिये न कहूँगा। परन्तु खड्गसिंह केवल एक प्रार्थना करता हूँ उसे अस्वीकार न करना, नहीं तो मेरा दिल टूट जायगा।'

'बाबाजी, आज्ञा कीजिये, मैं आपका दास हूँ, केवल यह घोड़ा न दूँगा।'

'अब घोड़े का नाम न लो, मैं तुमसे इसके विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।'

खड्गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि मुझे इस घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, परन्तु कुछ समझ न सका। हारकर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं, और पूछा—'बाबाजी, इसमें आपको क्या डर है?'

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया—'लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया, तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।'

और यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कभी कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये, परन्तु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊँचे विचार हैं, कैसा पवित्र भाव है। उन्हें इस घोड़े से प्रेम था। इसे देखकर उनका मुख फूल की नाईं खिल जाता था। कहते थे इसके बिना मैं रह न सकूँगा। इसकी रखवाली में

वह कई रातें सोये नही। भजन, भक्ति न कर रखवाली करते रहे। परन्तु आज उनके मुख पर दुख की रेखा तक न देख पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख्याल था कि कही लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया। ऐसा मनुष्य मनुष्य नही, देवता है।

: ३ :

रात्रि के अन्धकार में खड्गसिंह बाबा भारती के मन्दिर मे पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश पर तारे टिमटिमा रहे थे। थोड़ी दूर पर गाँवो के कुत्ते भौंकते थे। मन्दिर के अन्दर कोई शब्द सुनाई न देता था। खड्गसिंह सुलतान की बाग पकड़े हुये था। वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक किसी वियोगी की तरह चौपट खुला था किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे, परन्तु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था। हानि ने उन्हे हानि की तरफ से बेपरवाह.कर दिया था। खड्गसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया, और बाहर निकलकर सावधानी से फाटक बन्द कर दिया। इस समय उसकी आँखो मे नेकी के आँसू थे।

अन्धकार में रात्रि ने तीसरा पहर समाप्त किया, और चौथा पहर आरम्भ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठण्डे जल से स्नान किया। उसके पश्चात् इस प्रकार, जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर मुड़े। परन्तु फाटक पर पहुँच कर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई। साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मन-भर का भारी बना दिया। वह वही रुक गये।

घोड़े ने स्वभाविक मेधा से अपने स्वामी के पाँवो की चाप को पहचान लिया, और जोर से हिनहिनाया।

बाबा भारती दौड़ते हुये अन्दर घुसे, और अपने घोड़े के गले से लिपट कर इस प्रकार रोने लगे, जैसे बिछुड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते

बार-बार उसके मुंह पर थपकियां देते और कहते थे—'अब कोई गरीबों की सहायता से मुंह न मोड़ेगा।'

थोड़ी देर के बाद जब वह अस्तबल से बाहर निकले, तो उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे, ये आंसू उसी भूमि पर, ठीक उसी जगह, गिर रहे थे, जहां बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा होकर रोया था।

दोनों के आंसुओं का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'सुलतान घोड़े को देखकर डाकू खगड्सिंह के हृदय में हलचल होने लगी।' इस हलचल का वास्तविक कारण क्या था ?
   (क) उसने ऐसा घोड़ा कहीं नहीं देखा था।
   (ख) उसके विचार से साधु के लिये ऐसा घोड़ा निरर्थक था।
   (ग) वह स्वयं इस घोड़े को प्राप्त करना चाहता था।
   (घ) घोड़ा उसको देखकर हिनहिनाने लगा था।
   (च) जैसी प्रसंशा थी, घोड़ा वैसा ही था। ( )

२. 'लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।'
   बाबा भारती के इस कथन में उसकी कौन सी विशेषता प्रकट होती है ?
   (क) धूर्तता
   (ख) चापलूसी
   (ग) स्पष्टवादिता
   (घ) आत्मीयता
   (च) घबराहट ( )

३. खड्गसिंह घोड़े को वापस क्यों छोड़ गया ?

४. 'इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।'
   बाबा भारती के इस कथन के पीछे क्या उद्देश्य था ?

५. निम्न विलोम शब्दो का अन्तर स्पष्ट कीजिए :—

(क) आशा,	निराशा
(ख) प्रसन्नता,	विषाद
(ग) प्रेम	घृणा
(घ) विश्वास	भ्रान्ति

६. 'उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया।' निज की हानि और मनुष्यत्व की हानि लेखक ने किसे माना है और क्यो ?

७. प्रस्तुत कहानी के शीर्षक 'हार की जीत' की सार्थकता पर अपने विचार ३० शब्दो मे लिखिये।

८. डाकू खड्गसिंह की आँखो मे किस नेकी के आँसू थे ?

९. बाबा भारती ने घोड़े को सहलाते हुए यह क्यो कहा, 'अब कोई गरीबो की सहायता से मुँह न मोड़ेगा'।

१०. जब खड़गसिंह घोडा वापस करने आया उस समय यदि बाबा भारती जग जाते तो उन दोनो में क्या बातचीत होती ?

११. नीचे लिखे मुहावरों का अपने वाक्यों मे प्रयोग कीजिए :—

फूले न समाना, मुँह मोड़ना, छवि अंकित होना, लट्टू होना, हृदय पर सांप लोटना।

———

: ४ :

शत्रु

अज्ञेय

जीवन-रेखा :

'अज्ञेय' का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है। इनका जन्म सन् १६११ ई० में गोरखपुर के कसिया नामक ग्राम में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक मद्रासी अध्यापक के पास हुई। उन्ही से पढ़कर प्राइवेट मैट्रिक पास किया। बाद मे लाहौर से बी० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की और एम० ए० मे अंग्रेजी विषय लेकर अध्ययन किया, तभी सन् १६३० मे क्रान्तिकारियों के साथ बम बनाने के अपराध में पकड़े गये, जिससे आगे का अध्ययन रुक गया। चार वर्ष जेल मे और एक वर्ष नजरबन्दी मे व्यतीत करने के बाद ये 'सैनिक' साप्ताहिक, 'विशाल भारत' मासिक, 'आरती' मासिक, 'प्रतीक' द्वैमासिक आदि पत्र पत्रिकाओं के सम्पादक रहे। कुछ वर्ष आकाशवाणी के हिन्दी समाचार विभाग के प्रमुख पत्र, 'थॉट' साप्ताहिक के साहित्य-सम्पादक रहे और समाचार विवेचना का साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' निकाला। अज्ञेय जी रेडियो से लेकर सेना तक की नौकरी और आसाम के जंगलों से लेकर कन्या कुमारी तथा कश्मीर की झीलो के पार अमेरिका, जापान आदि विश्व के प्रमुख देशो मे अनेक बार भ्रमण कर चुके है।

अज्ञेय जी बहुविध रुचि सम्पन्न व्यक्ति है। देशी-विदेशी साहित्य, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि विषयो से लेकर फोटोग्राफी, चित्रकला, आतिशबाजी, बढ़ई गिरी, पाक विद्या, अंग्रेजी के अलावा संस्कृत, तामिल आदि भाषाओं का भी इन्हे ज्ञान है। यह बहुविध ज्ञान और व्यापक अनुभव अज्ञेयजी के साहित्य के विविध रूपों में परिलक्षित हुआ है।

साहित्य-सर्जना :

'अज्ञेय जी' वर्तमान हिन्दी साहित्य में आधुनिकता और प्रयोग के प्रवर्तक रहे हैं। इन्होंने 'तार सप्तक' (तीन भाग) का सम्पादन कर कविता-क्षेत्र में प्रयोगवाद का प्रवर्तन किया। 'शेखर एक जीवनी', (दो भाग), 'नदी के दीप', 'अपने अपने अजनबी' उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्र धनु रौंदे हुये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आगन के पार द्वार', प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं। 'विपथगा', 'कोठरी की बात', 'परम्परा', 'जयदोल', 'शरणार्थी', 'ये तेरे प्रतिरूप' आदि महत्वपूर्ण कहानी सग्रह हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद' और 'एक बूँद उछली' यात्रा-संस्मरण तथा 'आत्मने पद' निबन्ध सग्रह है।

कहानी-कला :

अज्ञेय जी विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृति के प्रतिनिधि कलाकार हैं। इनके चरित्र अहवादी है। उनका 'मैं' उनके चरित्रो का प्रतिनिधि रूप है। कभी अह चिन्तक के रूप मे आता है तो कभी नायक के रूप में अभिव्यक्त होता है । यह अह रूप उन्हे केवल अन्तर्मुखी बनाकर ही नही छोड़ता, वह उन्हे समाज के मगल के लिए भी उत्प्रेरित करता है। यही कारण है कि अज्ञेय जी का ध्यान समाज की आर्थिक विषमता, शोषण के अभिशाप और दयनीय जीवन की ओर गया है। उनका विद्रोही रूप विशेष कर राजनीतिक बन्दी से सम्बन्धित कहानियो में प्रकट हुआ है । यह विद्रोह सामाजिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत प्रश्नो और मूल्यों को लेकर उभरा है। भारतीय नारी का असन्तोष भी विद्रोही की चिनगारी बनकर प्रकट हुआ है। सश्लिष्ट वातावरण-चित्रण, परिनिष्ठित भाषा शैली, मार्मिक व्यंग्य, सटीक प्रतीक योजना और सांकेतिकता इनकी कहानियो की अन्यतम विशेषताएँ हैं।

शत्रु :

'शत्रु' कहानी में कहानीकार ने मानव-जाति के पथ-भ्रष्ट होकर

विनाश की ओर निरन्तर बढ़ते रहने के कारणों की खोज करते हुये, एक मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत किया है।

कहानीकार ने बड़ी सांकेतिकता के साथ स्पष्ट किया है कि मानव-जाति के उत्थान का शत्रु न धर्म है न समाज। उसका सबसे बड़ा शत्रु है, निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होने का मानव-स्वभाव। ज्ञान पहले धर्म, फिर समाज, फिर सत्ता, फिर भूख से लड़ने का सकल्प करता है, पर अपने आप से सघर्ष न करने की शक्ति के अभाव में वह किसी से भी नहीं लड़ पाता। जब तक इस प्रकार की आत्म-छलना चलती रहेगी तब तक मानव-जाति के शत्रु बढते रहेगे। अपनी इस दुर्बलता पर विजय पाना ही सबसे बडी विजय है।

: १ :

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव जाति उस अन्धकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उनका नेता बनकर उनके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सब को सुनाकर कहने लगा—मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ, भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिये एक सन्देश है।

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है। अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

: २ :

आखिर तंग आकर वह एक अन्धेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है। उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा—बहन, क्यों रोती हो?

उस स्त्री ने कहा—मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।

ज्ञान का निश्चय और दृढ हो गया। उसने कहा—"तुम मेरे साथ आओ; मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।" और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा—धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है, और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है; अतः हमारा शत्रु है।

लेकिन किसी ने कहा—जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें? वह समाज से पतित है, नीच है।

तब लोगों ने उसे समाज-च्युत करके बाहर निकाल दिया।

: ३ :

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इस प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा—ये धर्म-ध्वजी, पोंगे-पुरोहित-मुल्ला, ये कौन हैं? इन्हें क्या अधिकार है, हमारे जीवन को बाँध रखने का? आओ हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति-पथ पर बढ सकें।

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

: ४ :

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं। पहले अपने को

विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा,तब...

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले फटे-पुराने खाकी कपड़े पहने हुये था। मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थी, आँखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा—आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोजी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूँ। आपके देश में भूखा मर रहा हूँ। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ।

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला—अच्छा। मैं आपके दुःख से दु:खी हूँ। मुझे आप अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिये कुछ कर सकता हूँ।

: ५ :

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा ...

और उसने 'भूख के लड़ाकों' का एक दल बनाना शुरू किया जिसका उद्देश्य था, अमीरों से धन छीन कर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुप-चाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिये नित्य एक मुट्ठी चबेना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे

लिये असम्भव है ! यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूंछा, कितना बेमानी।

एक दिन किले की दीवार पर चढ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एक दम मे विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि उसमे कूद कर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौट कर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मै तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे ससार मे मेरा स्थान नही है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी मे देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी मे उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है मानो कह रहा है—बस, अपने-आपसे लड़ चुके ?

: ६ :

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले मे चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बडी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'शत्रु' कहानी का प्रमुख उद्देश्य क्या है ?
   (क) धर्म की व्यर्थता सिद्ध करना।
   (ख) ज्ञान के अज्ञान को बताना।
   (ग) समाज की बुराइयो पर व्यग्य करना।
   ✓(घ) मानव की कमजोरियों को बताना।
   (च) रोटी के महत्व को स्पष्ट करना।

( )

२. ज्ञान को समाजच्युत कर बाहर निकाल देने का क्या कारण था ?
   (क) वह धर्म के विरुद्ध प्रचार करता था।
   (ख) वह धर्म को मनुष्य का शत्रु समझता था।
   ✓(ग) उसने पराई और बहिष्कृत स्त्री को आश्रय दिया था।

(घ) वह झगड़ालू प्रकृति का था।

(च) वह समाज विरोधी लोगो का साथ देता था। (   )

३. 'बस अपने आप से लड चुके'

उपर्युक्त कथन में कौनसा भाव व्यक्त हुआ है ?

(क) व्यग्य

(ख) विनोद

(ग) क्रोध

(घ) खीज

(च) निन्दा (   )

४. नीचे कुछ प्रश्न दिये हैं, उनके सम्भावित उत्तर उनके नीचे कोष्ठक में हैं, जो उत्तर सही हो, उस पर सही ✓ ऐसा चिन्ह लगाइये।

(क) मनुष्य अपना विकास कौन सी स्थिति में कर सकता है।

(स्वतन्त्र, उन्मुक्त)

(ख) कार्य मे असफल होने पर मनुष्य क्या करे ?

(आत्महत्या, आत्मालोचन)

(ग) ज्ञान किस कारण असफल हुआ ?

(अज्ञान से, परिश्रम की कमी से)

५. ज्ञान के हृदय मे विदेशियों के प्रति विद्रोह क्यो धधक रहा था ?

६. "ज्ञान ने निराश होकर आत्महत्या की ठानली।

उक्त पंक्ति के अर्थ को तीन पक्तियो मे लिखिये।

७. ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधि होते हुये भी ज्ञान अपने प्रयासों में सफल क्यों नही हो सका ?

८. लेखक ने किन-किन को मनुष्य का शत्रु माना है और क्यो ?

९. यदि आप ज्ञान के स्थान पर होते तो भूखे विदेशी के साथ आप कैसा व्यवहार करते ?

१०. इस कहानी का शीर्षक 'शत्रु' क्यों रखा गया है ?

: ५ :

द्वन्द्व

श्री विष्णु प्रभाकर

जीवन-रेखा :

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म सन् १९१२ ई० में उत्तर प्रदेश के जिला मुजफ्फरनगर के ग्राम मीरापुर में हुआ था। उन्होंने पंजाब विश्व विद्यालय से बी० ए० और 'प्रभाकर' की परीक्षायें पास की। प्रारम्भ में उन्होंने पंजाब सरकार के कृषि विभाग में नौकरी की। पर वह कार्य उनकी अभिरुचि का न था। अतः १९४४ में उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपना पूरा समय साहित्य-रचना मे लगा दिया। वे कुछ वर्षों तक आकाशवाणी, दिल्ली के नाटक विभाग मे निर्देशक पद पर भी रहे हैं। समय-समय पर उन्होने पत्रकारिता मे भी रुचि ली है। 'जीवन साहित्य', 'बाल भारती', 'मानव धर्म', 'ज्ञानोदय', आदि पत्रिकाओं का सम्पादन उन्होंने किया है।

साहित्य सर्जना :

श्री प्रभाकर ने कहानी, नाटक, एकांकी रेडियो रूपक, रेखा चित्र सभी कुछ लिखा है। वर्तमान एकाकीकारों में उनका अपना विशेष महत्व है। इनके प्रमुख नाटक और रूपक निम्न हैं :

इन्सान, माँ का बेटा, उपचेतना का छल, हमारा स्वाधीनता संग्राम, वीर प्रताप, बारह एकाकी, दस बजे रात।

पिछले २० वर्षों मे श्री प्रभाकर ने कहानियाँ लिखकर भी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की है। उनके प्रमुख कहानी संग्रह—'आदि और अन्त', 'रहमान का बेटा', 'जीवन पराग', 'संघर्ष के बाद', 'जिन्दगी के थपेड़े' आदि है।

कहानी-कला :

प्रभाकर जी ने जीवन को निकट से देखा है। इसीलिये उनकी कहानियो मे जीवन की यथार्थता एवं सजीवता के दर्शन होते हैं। विचारो मे वे गाँधीवादी हैं और समाज व धर्म में प्रचलित रूढ़ियों व अन्ध विश्वासो के वे कट्टर विरोधी हैं। कहानियो मे वे कथोपकथन के माध्यम से चरित्र विश्लेषण पर अधिक बल देते हैं। भाषा बोलचाल की शब्दावली से अनुप्राणित रहती है।

द्वन्द :

यह कहानी सवाद प्रधान है। सुजाता ने बगाल के अकाल पीड़ितो की दुर्दशा के नग्न चित्र देखे। उससे दिल को बडा धक्का लगा। 'द्वन्द्व' कहानी मे लेखक द्वारा उस प्रभाव को मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रित किया गया है।

मानवता का तत्व सुजाता को त्याग के लिये प्रेरित करता है। उसका पति प्रो० सोमेन एकात मे सवाद द्वारा इस त्याग की निरर्थकता पर जोर देता है। वेदना की अनुभूति उसमे इतनी तीव्र है कि वह उस सवाद के बौद्धिक नियत्रण से दब नही सकी है। वह अपने पति की बुद्धि-जन्य निर्लिप्तता में किसी प्रकार का योग नही देती और उसके आफ़िस चले जाने पर घरेलू वातावरण मे डूबने की एक बार चेष्टा भी करती है कि मूल बात को ही मन से निकाल दे, पर सहसा अनन्त को पुनः आया पाकर वह काँप उठती है। अन्त मे उत्पन्न हुये द्वन्द्व को सामने रखना इस कहानी का अभिप्राय है। एक ओर अकाल की विभीषिका है तो दूसरी ओर लड़को का मूडन। माता का हृदय लड़को के मुडन मे ममत्व देखता है पर नारी की उदारता आगे बढ़कर बुभुक्षु की करुण पुकार तक पहुँचती है। मुडन के स्थान पर सहानुभूति-पूर्ण दान देकर वह हर्षित ही होती है और तभी उसकी आन्तरिक वेदना समाप्त होती है। सुजाता और सोमेन का द्वन्द्व भी प्रतीकात्मक है—हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व।

मुजाता की आँखें भर आईं। सारे चित्र उसके सामने इस तरह घूम गये, मानों वे सब सजीव घटनाएँ अभी उसके सामने घट रही है और वह उन्हें देख रही है—असमर्थ, विवश, पत्थर के बुत की तरह, न हिल सकती है, न बोल सकती है। केवल उसके दिल का दर्द आँखों में उमड़ कर चारों ओर फैलता जा रहा है, जिसकी चमक देखकर वह स्वयं ही काँप उठती है, लेकिन वह सोचती है कि उस कम्पन का मूल्य ही क्या, जो हाथों को आगे न बढा सके, जो पैरो को चलने पर विवश न करे...... वह रुक गई। उसका दर्द और भी गहरा हो उठा। उसने फुसफुसाकर कहा—मुझे चलने से कोई रोक नही सकता, मुझे देने से कोई मना नहीं कर सकता। नही, मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं चाहे जो कर सकती हूँ।......

विचारों पर फिर एकदम धक्का लगा। वह खडी थी, अब पास पड़े पलंग पर बैठ गई या कहे, लुडक पडी, क्योंकि उसी पर उसकी छोटी लड़की अमला सोई थी। वह एकदम चौंककर उठी... ...'ओह! सुजाता हड़बड़ायी। अमला को गोद में उठा लिया, पुचकारा। क्षण भर के लिये सब विचार हवा हो गये। उसे अपने पर ग्लानि हो आई, लेकिन दूसरा क्षण बीता, अमला गोद मे चिपक कर सो गई और वह फिर कहने लगी—कल इसी वक्त अनन्त आया था। उसने आते ही कहा था—"भाभी! भीख माँगने आया हूँ।" सुजाता हँसी थी, "भीख माँगने आये हो, तो दरवाजे पर जाकर खड़े हो। एक मुट्ठी आटा ले आती हूँ।" वह नही हँसा था, बल्कि गम्भीर होकर बोला था, "आटा नही भाभी मुट्ठी में रुपये भरो।"

"रुपये"!

"हाँ, रुपये, भाभी! जो कुछ भी जीवन में जोड़ा हो, वह मुझे दे दो।"

हँसी घिर आई "डाका डालने का बड़ा सुन्दर तरीका ढूँढा है तुमने।"

"आशीर्वाद दो भाभी, ऐसा डाका डालने मे मैं समर्थ होऊँ।" अनन्त जरा भी नही हँसा। सुजाता शकित हुई "आखिर क्या बात है, अन्तू ?"

"बात जानोगी ?"

"हाँ, कुछ बताओ भी, तुम तो आज पहेली बुझा रहे हो।"

"यह ऐसी पहेली है भाभी, जो मेरे बुझाये न बुझेगी"—अनन्त बोला और फिर उसने बगल से अखबारो का एक बण्डल निकाला, उसे पलग पर फैलाने लगा "लो देखो भाभी ! बात यह है ! देखती हो इन तसवीरो को, सुनती हो, ये क्या कहती है ?"

सुजाता ने अचरज से उन तसवीरो को देखा। देखकर अचकचाई, काँपी, फिर धीरे से पढ़ने लगी। (१) ये दो बच्चे अपने पिता को अन्तिम साँस तोड़ते देख रहे हैं। (२) यह माँ अपने मरते हुए बच्चे को छाती से चिपका रही है, दूसरा बच्चा मरा पड़ा है, और तीसरा कहता है, माँ ! भूख लगी है। (३) अब इसे दूध की जरूरत नही माँ ! (४) आधी छटांक खिचड़ी के लिये अपार भीड़ (५) सड़को पर लावारिस लाशो का ढेर। (६) यह बच्चा है, जिसे भूखी माँ ने एक आने में बेचा है। (७) ओ, जलाने वाले ! इसे भी ले जाओ······ सुजाता आगे न पढ़ सकी। दिल में कुछ चुभने लगा। बोली "अन्तू। आखिर यह सब क्या है ?"

"भूख"

"इन्हे कोई खाना देने वाला नही।"

"नही।"

"तो ?"

"इन्ही के लिये भीख माँगने आया हूँ।"

"ओह ! तुम चन्दा कर रहे हो और ये कलकत्ते के दृश्य है।" सुजाता एकदम बोल उठी।

"जी आपने ठीक समझा।"

सुजाता हँसी नही, बल्कि गम्भीर होकर बोली "कलकत्ते की बातें मैंने सुनी हैं, अन्तू ! अन्न की कमी से यह सब अनर्थ हो रहा है और

अभी क्या होगा, इसका किसी को भी पता नही है। कौन जाने, हमे भी इसी तरह तडप-तडप कर दम तोड़ना पडे।"

"शायद तुम ठीक कह रही हो, भाभी!"

"आखिर यह सब क्यो होता है?"

"कौन जाने?"

"हाँ, अन्तू! कौन जाने भगवान ऐसा क्यों करते है! शायद प्रलय होने वाला है!"

"शायद!"

दोनों चुप हो रहे। क्षणिक सन्नाटा छा गया, फिर अन्तू बोला "मुझे आगे जाना है, भाभी!"

सुजाता चौंक पडी "ओह! मैं भूल गई, अन्तू। जी दुख रहा है। मैं कल सवेरे ही तुम्हारे घर रुपये भिजवा दूँगी। सन्ध्या को वे आयेंगे।"

"मैं समझा" "अन्तू जरा मुस्कराया "मैं कल आऊँगा।"

सुजाता लजाई, "आ जाना, मै जरूर दूँगी अन्तू, अब तो……"

"जानता हूँ" अन्तू ने कहा, और उठकर चल पड़ा। सुजाता उसे देखते देखते खड़ी रही। अचानक जी में उठा, पुकार कर कहे "अरे अन्तू! जरा ठहर तो, पानी-वानी पीता जा।" लेकिन शब्द वाणी का साथ न दे सके, भावों से जकड़े रहे।

और यही बात लेकर सुजाता सोमेन से सलाह करने बैठी। नारी थी—बात का क्रम जानती थी। सन्ध्या को भोजन से निपटकर, जैसे ही सोमेन ने नया मासिक उठाया, सुजाता बोल उठी "अखबार तो आप रोज ही पढ़ते हैं।"

सोमेन मुस्कराया "पढता हूँ, तुम भी पढ़ोगी? कई बार कह चुका, आजकल अखबार जरूर पढ़ा करो।"

सुजाता लजा गई "पढ़ना तो चाहियें।"

"तो मैं कह दूँगा 'हिन्दुस्तान' या 'विश्वामित्र' दे जाया करेगा। अंग्रेजी का तो तुम ठीक ठीक समझोगी नही।"

"हाँ", सुजाता ने कहा। फिर रुककर बोली "सुना है कलकत्ते में तो आदमी सडकों पर मर रहे हैं।"

सोमेन ने पत्रिका पलटते-पलटते कहा "मौत स्थान की चिन्ता नहीं करती, सुजाता !"

"जी, पर इस तरह आदमी मरने लगे तो······।"

"तो दुनिया निबट जायगी" सोमेने बड़े जोर से हँस पड़ा, "तो फिर कौन बुरा काम होगा, यह दुनिया बनी ही क्यों है ?"

"भगवान जाने ······!"

'भगवान को ही कौन जानता है ?'

सुजाता सोमेन के इस तर्क-प्रवाह से अप्रतिभ हुई, बोली, "आपने तो दर्शन-शास्त्र पढ़ा है। मैं आपसे तर्क नहीं करती। मै तो पूछती थी, कलकत्ते मे जो लोग सड़को पर भूखे मर रहे है, माँ के देखते-देखते उसके बच्चे प्राणो को छोड देते है, अपने बच्चों को बिलखते छोड़कर माँ-बाप आँख मीच लेते है, यह जो अव्यवस्था और अन्याय फैला है, उसके लिये कौन जिम्मेदार है ?"

"भगवान," सोमेन ने उसी तरह आँखें गाड़े कहा।

"और"—सुजाता बोल उठी आप-ही-आप।

"भाग्य।"

"और ?"

"राजा।"

सुजाता मशीन की तरह फिर 'और' कहने को हुई, पर रुक गई। सोमेन बात करने के मूड़ मे नही था, यह वह समझ गई। इसलिये उसका दिल कुछ भर आया, ग्लानि-सी पैदा हुई। आँखों मे जैसे कुठार कसक उठा, मलने लगी। अब सोमेन ने आँखें ऊपर उठाई। जाना, सुजाता रिसा गई है, इसलिये मुस्करा उठा और बोला, "और नही पूछोगी, सुजाता ?"

क्रोध बह पड़ा, "आप किसी को कुछ समझते हैं ! आपने कोई क्या

पूछे !"

सोमेन और भी मुस्कराया, "आपकी बात का जवाब मैं दे रहा हूँ, अगर वह आपके मन के अनुसार नहीं है, तो मैं क्या करूँ ?"

"खाक," सुजाता रिसाई रही।

सोमेन हँस पड़ा, "खाक तुम्हें महँगी पड़ेगी, सुजाता ! भारत में उन बेवकूफों की कमी नहीं है, जो रात-दिन खाक को माथा नवाया करते हैं। मुझे साधू बनने मे कोई आपत्ति नहीं है।"

सुजाता भी ढीली पडी, "तब इस घर का क्या करोगे ?"

"दान।"

"अभी क्यों नहीं कर देते ?"

"गृहस्थी मे रहते सर्वस्व-दान पाप है।"

"सर्वस्व नहीं, वह तो केवल कुछ रुपयों की बात है।"

"रुपये", सोमेन चौंका।

"जी, सुजाता मुस्कराई।"

सोमेन ने अचरज से सिर उठाया और सुजाता को देखा। वह हँसना चाह रही थी, परन्तु विषाद उसे मथे डाल रहा था और बेवसी के कारण अपने पर झुंझला रही थी। सोमेन को बड़ा अजीब-सा लगा। उसने पत्रिका बन्द कर दी और पास आकर कहा, "सुजाता ! आखिर बात क्या है ?"

सुजाता ने ऊपर देखा और कहा, "बात यही है कि अन्नू आया था।"

"अनन्त ?"

"जी"

"चन्दा माँगने के लिये ?"

"जी।"

"आपने कहा कल आना ?"

"जी"

"दिया क्यों नहीं ?"

विश्वास नही करता ।

"पाप...!" सुजाता काँप उठी ।

"हाँ पाप ! जो वस्तु मनुष्य को अशक्त बनाये, जो उसके आत्म-विश्वास को खण्डित करे, जो उसे दूसरे का आश्रित बनाये वह पाप है, सहस्र बार पाप है ।"

सुजाता फिर कुण्ठित हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण एक बात उसे सूझ आई बोली, "पराश्रय की बात अगर सच है, तो घर-घर में यह पाप फैला है । मैं आप पर आश्रित हूँ । बच्चे हम दोनों पर आश्रित हैं ।"

सोमेन हँस पड़ा, "तर्क तुम्हें भी आता है सुजाता, पर तुम एक भूल करती हो, जिस तरह तुम मुझ पर आश्रित हो, उसी तरह मैं तुम पर आश्रित हूँ । हम सब एक दूसरे पर आश्रित है, यह गृहस्थ जीवनयापन के लिये किया गया समझौता मात्र है, परन्तु भूखे को भोजन देकर तो तुम उसे सदा के लिये निकम्मा बना रही हो । वह न भोजन के लिये प्रयत्न करेगा, न भूखा मर सकेगा, केवल हाथ पसारे गिड़गिडाया करेगा, सुजाता ! यह जीते-जी की मौत है, महा पाप है ।"

सुजाता की बुद्धि पर बार-बार ठेस लग रही थी । वह बार-बार कुण्ठित हो उठती थी । बार-बार फिर उसे कुछ सूझ जाता था । बोली "लेकिन आप भूलते है, स्वामी । यह उन व्यवसायी भिखमगों की बात नही है । इन्हें तो इस सत्यानाशी दुर्भिक्ष ने मरने को विवश किया है और फिर वे सब लोग माँगने को कहाँ जा रहे हैं, वे तो भूखो मर रहे हैं... ।"

इसी समय सहसा अमला जाग कर रो उठी । सुजाता ने लपक कर उसे उठा लिया । छाती उसकी भर रही थी, आँखे उमड़ी पड़ती थी । बच्ची को कलेजे से लगाते ही बरस पड़ी । सोमेन ने अचरज से चकित इस नारी को देखा, जिसकी आँखों में अब एक अद्‌भुतभय साकार होता जा रहा था-कौन जाने, एक दिन हमे भी, भूख की ज्वाला में झुलसना पड़े । कौन जाने ये बच्चे.....उसी क्षण उसके सामने अखबार की तसवीरें घूम गईं । हर एक तसवीर में उसने देखा अपने को, सोमेन को और

अपने दोनों बच्चों को··· " वह काँप उठी, सिहर उठी, बच्चे का जार से छाती में भर कर उसने अपने होठ काट लिये। कहीं सोमेन उसके आँसू न देख ले, लेकिन सोमेन ने उन आँसुओं को देखा, उन आँसुओं के श्रोत को भी देखा, फिर चुपचाप छड़ी उठाई और बाहर चला गया। जाते हुए कहा "सुजाता ! तो जरा घूम आऊँ। सिर भारी है, दूध न पीऊँगा।" और वह चला गया। उसके बाद फिर उस रात दोनों मे कोई बात नही हुई। सुजाता ने मशीन की तरह गृहस्थी के काम सभाले। दूध स्वय भी नही पिया। सब जमा दिया। बरतन मले, चूल्हा लीपा, बच्चो की आँखो में काजल डाला और चुपचाप बड़े लड़के राजू को पति के पलग पर सुला आई। छोटी अमला को अपनी छाती में समेट कर पड रही। सोचती रही, पति आयें तो उठ कर किवाड़ खोल दे, लेकिन किवाड़ खुले पड़े रहे। लालटेन अकेली आँगन में प्रकाश फेकती रही और जब स्वप्नों की दुनिया में स्वामी के लड़-भिड़कर कलकत्ते भाग जाने की बात से डरी हुई सुजाता ने हड़बड़ाकर आँखे खोली, तो दूध वाला कई आवाजे दे चुका था। आँगन में धौला-धौला प्रकाश फैलने लगा था और सामने के आले मे दो चिड़ियाँ दिन का स्वागत-गान गा रही थी। सोमेन तब शायद स्वप्न लोक मे जापान के वायुयानों से बमों को गिरते देख रहा था और इसी कारण कभी-कभी काँपने का नाट्य कर जाता था। सुजाता ने शीघ्रता से बाहर जाते-जाते पुकारा, "उठो जी, दिन निकल आया है।" सोमेन भी उठा, बच्चे भी उठे, घर में फिर रोज की तरह चहल-पहल शुरू हो गई। झाडू-बुहारू, चौका-बासन, दातुन-कुल्ला, चाय-पानी सभी कुछ पूर्ववत् चला। अखबार वाला पुकार कर अखबार डाल गया। सोमेन ने चुपचाप उसे पढ़ लिया, फिर स्नान किया, और भोजन किया और दफ्तर चला गया। यह सब और दिनो की तरह आज भी हुआ, परन्तु दिल-ही-दिल मे दोनो सकुचे-से, रिसाये से, रहे, न सुजाता हँसी, न सोमेन ने अट्टहास किया। बच्चे खेलने के लिए बाहर निकले सो निकले, किसी ने उन्हे पुकारा भी नही। दोनों भरे हुए थे, परन्तु

जैसे ही सोमेन आँखों से ओझल हुआ, सुजाता का कंण्ठ खुल गया। चीखकर पुकारा-अरे-रज्जू ! अरी अमला ! कहाँ गये तुम कमबख्तो ! सवेरा हुआ नही भिखमगों की तरह बाहर निकल जाते हैं, मैं कहती हूँ, तुम्हारे नसीब में भीख माँगना ही लिखा है।..........अमला तब चीखती हुई आ रही थी, लपक कर उसे पकड़ लिया और तड़ाक से एक तमाचा उसके गाल पर जमा दिया, वह तडप उठी। देर तक साँस नही आई। मुँह सुर्ख हो उठा। सुजाता की आँखों में क्रोध बरस रहा था, जरा भी नही पिघली, बोली "जान से मार डालूँगी, अब बाहर निकली तो। कहाँ है वह रज्जू ?"

अमला चीखती ही रही, बोली नही।

"बताती नही ?"

अमला काँपी, सहमी, और भी जोर से चीख उठी, फिर न जाने क्या सूझा, जमीन पर लेट कर जोर-जोर से हाथ-पैर पटकने लगी। बस, सुजाता यही कच्ची थी। अमला ने हाथ-पैर पटके नही और उसे हँसी आई नही। बरबस हँस पडी और अमला को जबरदस्ती अपनी छाती में भर कर उठा लायी—चुप ! चुप !!

"कहाँ गई थी.......।"

"..........."

"दूध नहीं पियेगी ?"

बस अमला का सप्तम स्वर नीचे उतरने लगा और दोनो हाथों से आँसुओं को इधर-उधर पोछ-पाँछकर उसने सुसकते-सुसकते कहा, "पिऊँगी।"

"बुला रज्जू को भी।"

अमला ने अब शिकायत की, "मुझे भइया ने माला।"

"कहाँ है वह, उसे मै मारूँगी।"

तब तक वह भी आकर माँ के गले से झूलने की चेष्टा कर रहा था।

कमला ने देख लिया, हँस कर बोली, "लो, दूध पी ले ! मां ! भइया आ गया।"

सुजाता ने कमला को देखा, फिर रज्जू को देखा, मुसकराई और दोनों के आगे एक-एक कटोरा बढ़ा कर बोली, "पियो।"

और उठी कि कल भाजी में आधे दो मद्दू सा दे, तभी बाहर से किसी ने पुकारा, "भाभी !"

सुजाता को मानो मौत ने पुकारा, डर गई लेकिन पुकारने वाला अन्नू था, अन्दर चला आया, बोला, "नमस्ते, भाभी !"

सुजाता ने उस क्षण पृथ्वी को फटते और अपने को उसमें समाते देखा और देखकर वह बड़े जोर से हिली, लेकिन किसी तरह अपने को बटोर-बटोरकर बोली, "आओ अन्नू !"

"आया हूँ कि धन्यवाद देता चलूँ।"

"धन्यवाद !" सुजाता के मुँह से निकला और शरीर बड़े जोर से काँपा।

अन्नू बोलता रहा, "भइया दफ्तर जाते जाते मुझे सौ रुपये दे गये थे। कहते थे तुम्हारी भाभी ने रिलीफ फण्ड में दिये हैं......

सुजाता की साँस रुक-सी गई, आँखें चमक उठी। उसी तरह खड़े दीवार थाम ली। अन्नू कह रहा था, "भइया ने बताया, इस बार जो रज्जू का कर्ण-वेध संस्कार करना था, वह नहीं होगा, उसी के लिये जोड़े हुये रुपये तुमने भेजे हैं।"

....

"और भाभी ! भइया कैसे बड़े अजीब आदमी हैं, कहने लगे, मैं तो दान-पुन में विश्वास करता नहीं, परन्तु इस समय उनकी रक्षा न की गई तो सारे देश का साहस टूट जायेगा और युद्धकाल में यह सबसे बुरी बात है.........!"

सुजाता अब भी नहीं बोली।

अन्नू ने कहा, "मैंने कहा, भइया ! कुछ भी समझ लो। मतलब

नाक पकड़ने से है, ग़ैर, भाभी ! जा रहा हूँ, बहुत काम है, लेकिन आज मुहूर्त शुभ हुआ है, घर-घर तुम्हारी चर्चा करके पैसा मागूँगा, इसलिये तुम्हें प्रणाम करने आया हूँ।"

इतना कह कर अन्तू ने हाथ जोड़े और बाहर चला गया। सुजाता अब तक उसे देख रही थी। अब एकदम जहाँ खड़ी थी, वहीं बैठ गई। हृदय पिघल आया। आँखो मे आँसू उमड पड़े, पर अब उनमें विषाद नहीं, हर्ष भरा हुआ था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'मैं समझा' अन्तू जरा मुस्कराया—'मैं कल आऊँगा'।
अन्तू क्यों मुस्कराया था ?
(क) चन्दा प्राप्त होने की सभावना पर।
(ख) सुजाता की दयार्द्रता देखकर।
(ग) स्वय की सफलता पर।
(घ) सुजाता की पति-परायणता पर।
(च) सुजाता की बेबसी पर। ( )

२. 'कौन जाने हमें भी इसी तरह तड़प-तड़प कर दम तोड़ना पड़े।'
सुजाता के इस कथन में उसका कौनसा मनोभाव प्रकट होता है ?
(क) निराशा
(ख) करुणा
(ग) व्यथा
(घ) विषाद
(च) व्यंग्य

३. सोमेन ने अव्यवस्था और अन्याय के लिये किन-किन को जिम्मेदार बताया ?

४. 'सुजाता आगे न पढ़ सकी। दिल मे कुछ चुभने लगा।' वह क्या था जो दिल मे चुभने लगा ?

५. 'भइया कैसे बड़े अजीब आदमी हैं।' अन्नू ने सोमेन को अजीब आदमी किस कारण से बताया ?

६. 'सुजाता की आँखों में विषाद नहीं—'हर्ष भरा हुआ था' सुजाता के हर्ष का क्या कारण था ?

७. सुजाता के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण ४० शब्दों में कीजिये।

८. सोमेन के सुधारवादी विचारों पर अपनी भाषा में ७० शब्दों में एक छोटा सा लेख लिखिये।

९. 'आया हूँ कि धन्यवाद देता चलूँ'।' यह धन्यवाद किस बात का था ?

१०. सोमेन हँस पड़ा—'साक तुम्हें मँहगी पड़ेगी, सुजाता।'
साक मँहगी पड़ने से क्या अभिप्राय था ?

११. सोमेन ने दया और परोपकार को पाप क्यों बताया ?

१२. अन्नू ने सोमेन से प्राप्त हुए १०० रुपये की बात जब सुजाता से कही, तो इसकी सुजाता पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी ? अपना उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिए।

एटम बम

अमृतलाल नागर

जीवन-रेखा :

अमृतलाल नागर का जन्म सन् १९१६ ई० मे एक गुजराती नागर परिवार में हुआ । अल्पायु में ही इन पर परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ आ पड़ीं जिसके कारण ये नियमित शिक्षण नही प्राप्त कर सके, परन्तु जीवन के अनुभवों से इन्होने खूब सीखा । लोक-नाट्य, पुरातत्व, विभिन्न बोलियाँ और भाषाएँ इनकी रुचि के विशेष विषय रहे हैं । इन्होंने कई वर्ष बम्बई और मद्रास मे सिनेमा के स्टुडियो मे पट-कथा-लेखक, संवाद लेखक, गीत-लेखक, उच्चारण-सुधारक के रूप में काम किया । कुछ समय लखनऊ आकाशवाणी केन्द्र मे नाट्य निर्देशक भी रहे । लेखन-कार्य में बाधा पड़ने पर नौकरी से इन्होने त्याग-पत्र दे दिया । तदनन्तर स्वतन्त्र लेखन की ओर प्रवृत्त हुये । 'उच्छृ खल', 'चकल्लस' 'सनीचर' आदि कई हास्य रस के मासिक-पाक्षिक-साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओ के ये सम्पादक भी रहे ।

साहित्य-सर्जना :

नागर जी प्रगतिशील विचारों के कलाकार हैं । हास्य-व्यंग के लेख और कहानियाँ लिखने मे इन्हे बड़ी प्रसिद्धि मिली । कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, फिल्म सिनेरियो, पैरोड़ी आदि लिखकर इन्होंने माँ भारती के भंडार को समृद्ध बनाया । 'महाकाल', 'ये कोठे वालियां', 'बूँद और समुद्र', 'सुहाग के नूपुर' तथा 'शतरज के मोहरे' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । इनके नवीनतम उपन्यास 'अमृत और विष' पर साहित्य अकादमी ने पुरस्कार देकर इन्हें सम्मानित किया है । 'एक दन हजार

दास्ता', 'एटम बम', 'पीपल की परी', 'वाटिका' 'अवशेष', 'नवाबी मसनद', 'तुलाराम शास्त्री' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह है। नागरजी बंगला, मराठी और तमिल भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं। इनसे सम्बन्धित कई हिन्दी अनुवाद भी नागर जी की साहित्य-सेवा के विशिष्ट अंग है।

कहानी-कला :

अमृतलाल नागर प्रगतिशील विचारों के कथाकार हैं। वे जीवन और समाज की समस्याओं को उभार कर कहानी मे इस ढग से चित्रित करते हैं कि पाठक का मन उसकी आर्द्रता से भीगता चलता है। इनमें नये नये प्रयोग और शिल्प-वैविध्य के प्रति आग्रह नहीं है। कथ्य को प्रभाव-शाली ढग से व्यक्त करने की कला में ये सिद्धहस्त है। इनके चरित्र मानव संघर्षों के प्रतीक हैं।

एटम बम :

'एटम बम' कहानी विज्ञान, युद्ध और शान्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को मानवता के परिप्रेक्ष्य मे समझने-परखने की कहानी है। आज विश्व का प्रत्येक मानव विज्ञान की उपलब्धियो को आशका की दृष्टि से देखने लगा है क्योंकि फूल की तरह जीवन को सौरभ, ताजगी और प्रसन्नता देने वाला विज्ञान अपने मूल धर्म को भूल कर वज्र की तरह पीड़ाकारी और निर्मम सिद्ध हो रहा है। युद्ध का अनिवार्य कारण बन-कर वह मानवता को नष्ट करने पर उतारू है। जीवन की ममता और करुणा के श्रोत सकटग्रस्त हैं। इन्ही सवेदनाओ को नागर जी ने कोबा-याशी के अनुभूतिप्रवण हृदय द्वारा बार-बार उभारने का प्रयत्न किया है।

कहानी की पृष्ठभूमि द्वितीय विश्व युद्ध की वह विध्वसकारी लीला है जिसमें हिरोशिमा और नागासाकी के लाखो निर्दोष प्राणियो का जीवन होमा गया।

कहानी का अन्त आस्था और जीवन-शक्ति को वेग देने वाला है।

नर्स के ये शब्द, 'एटम की शक्ति से हार कर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को मरते देखते रहेंगे' ? विज्ञान की ध्वसात्मक प्रवृत्तियों पर मानव की अदम्य प्राण-चेतना, असीम निर्माण शक्ति, अडिग आत्म-विश्वास और करुण भावना के विजय-चिह्न हैं।

चेतना लौटने लगी। सास मे गंधक की तरह तेज बदबूदार और दम घुटाने वाली हवा भरी हुई थी। कोवायाशी ने महसूस किया कि बम के उस घातक धडाके की गूँज अभी भी उसके दिल में धँस रही है। भय अभी भी उस पर छाया हुआ है। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा है। उसे सास लेने मे तकलीफ होती है, उसकी सांस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुये कोवायाशी का जर्जर मन इन दोनो अनुभवों से खीझकर कराह उठा। उसका दिल फिर गफलत में डूबने लगा। होश मे आने के बाद, मृत्यु के पंजे से छूट कर निकल जाने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शान्ति उसे मिलनी चाहिये थी, उसके विपरीत यह अनुभव होने से ऊबकर, तन और मन की सारी कमजोरी के साथ वह चिढ उठा। जीवन कोवायाशी के शरीर में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये विद्रोह करने लगा। उसमें बल का सचार हुआ।

कोवायाशी ने आँखें खोली। गहरे कुहासे की तरह दम घुटने वाला जहरीला धुआँ हर तरफ छाया हुआ था। उसके स्पर्श से कोवायाशी को अपने रोम-रोम मे हजारों सुइयाँ चुभने का-सा अनुभव हो रहा था। रोम-रोम से चिनगारियाँ छूट रही थीं। उसकी आँखो में भी जलन होने लगी, पानी आ गया। कोवायाशी ने घबराकर आँखें मीच ली।

लेकिन आँखे बन्द कर लेने से तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोवायाशी के प्राण घबरा उठे। वे कही भी सुरक्षित न थे। मौत अँधेरे की तरह उस पर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशी की आत्मा रो उठी। हारकर उसने फिर अपनी आँखे खोल दी। हठ के साथ वह उन्हें खोले ही रहा। जहरीला धुआँ लाल मिर्च के पाउडर की तरह उसकी आँखों मे भर रहा था। लाख तकलीफ हो,

मगर वह दुनिया को कम से कम देख तो रहा है। बम गिरने के बाद भी दुनियाँ अभी नेस्तनाबूद नहीं हुई आँखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो रही है। गर्दन घुमाकर उसने हिरोशिमा की धरती को देखा, जिस पर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिये उसके मन मे ममत्व जाग उठा। कमजोर हाथ आप ही आप आगे बढकर अपने नगर की मिट्टी को स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

......मन कही खोया। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमी का एहसास हुआ। यह एहसास बढ़ता ही गया। आन्तरिक हृदय से सुख का अनुभव करते ही कल्पना दुःख की ओर प्रेरित हुई। स्मृति झकोले खाने लगी।

चेतन-बुद्धि पर छाये हुये भय से बचने के लिये अन्तर-चेतना की किसी बात पर विस्मृति का मोटा पर्दा पड़ रहा था। मौत के चगुल से छूटकर निकल आने पर, पार्थिवता की बोझ-स्वरूप धरती के स्पर्श से जीवन को स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुख मे घुन लग गये। भय ने नीवें डगमगा दी। अपनी अनास्था को दबाने के लिये वह बार-बार जमीन छूता था। अन्तर के अविश्वास को चमत्कार का रूप देते हुये, इस खुली जगह मे पड़े रहने के बावजूद अपने जीवित बच जाने के बारे मे उसे भगवान की लीला दिखाई देने लगी।

करुणा सोते की तरह दिल से फूट निकली। पराजय के आँसू इस तरह अपना रूप बदल कर दिल मे घुमेड़े ले रहे थे। जहरीले धुएँ के कारण आँखों मे भरे हुये पानी के साथ-साथ वे आँसू भी घुल-मिलकर गाल से ढुलकते हुये जमीन पर टपकने लगे।

बेहोश होने से कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलय को देखा था, उसकी विकरालता अपने पूरे वजन के साथ कोबायाशी की स्मृति पर आघात करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। वह ठीक-ठीक सोच नही पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या?......धड़ाका।

जूड़ी बुखार की कँपकँपी की तरह जमीन काँप उठी थी। बम था—दुश्मनों का हवाई हमला। हजारों लोग अपने प्राणों की पूरी शक्ति लग कर चीख उठे थे।··· "कहाँ हैं वे लोग ? वे प्राणान्तक चीखें, वह आर्तनाद जो बम के धमाके से भी ऊँचा उठ रहा था। वो इस समय कहाँ हैं ? खुद वह इस समय कहाँ है ? और ·····

कुछ खो देने का एहसास फिर हुआ। कोबायाशी विचलित हुआ। उसने कराहते हुये करवट बदल कर उठने की कोशिश की, लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी। उसने फिर अपनी गर्दन जमीन पर डाल दी। हवा में काले-काले जर्रे भरे हुये थे। धुआँ, गर्मी, जलन, प्यास—उसका हलक सूखा जा रहा था। बेचैनी बढ रही थी। वह उठना चाहता था। उठकर वह अपने चारों तरफ देखना चाहता था! क्या? यह अस्पष्ट था। उसके दिमाग मे एक दुनियाँ चक्कर काट रही थी। नगर, इमारतें, जन-समूह से भरी हुई सड़कें, जाती-जाती सवारियाँ, मोटरें, गाड़ियाँ, साइकिलें······और······दिमाग इन सबमें खोया हुआ कुछ ढूँढ रहा था; अटका, मगर फौरन ही बढ़ गया। जीवन के पच्चीस वर्ष जिस वातावरण से आत्मवत् परिचित और घनिष्ठ रहे थे, वह उसके दिमाग की स्क्रीन पर चलती-फिरती तस्वीरों की तरह प्रकट हो रहा था। लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा-मिटा-सा ! कल्पना में वे चित्र बड़ी तेजी के साथ झलक दिखाकर बिखर जाते थे। इससे कोबायाशी का मन और भी उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ रही थी। हलक मे काँटे पड़ गये। और उसमे उठने की ताब न थी। एक बूँद पानी के लिये जिन्दगी देह को छोड़ कर चले जाने की धमकी दे रही थी, और शरीर फिर नही उठ पाता था। कोबायाशी को इस वक्त मौत ही भली लगी। बड़े दर्द के साथ उसने आँखें बन्द कर ली।

मगर मौत न आयी।

कोबायाशी सोच रहा था। "मैंने ऐसा कौनसा अपराध किया था

जिसकी यह सजा मुझे मिल रही है ? अमीरो और अफसरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था जो यह लड़ाई चाहता था ? दुनियाँ अगर दुश्मनी निकालती, तो उन लोगों से । हमने उनका क्या बिगाड़ा था ? हमें क्यों मारा गया ?·········प्यास लग रही है । पानी न मिलेगा । ऐसी बुरी मौत मुझे क्यों मिल रही है ? ईश्वर ! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था ?

करुणासागर ईश्वर कोवायाशी के दिल में उमड़ने लगा । आँखों से गंगा-जमुना बहने लगी । सबसे बड़े मुंसिफ के हुजूर मे लाठी और भैंस वाले न्याय के विरुद्ध वह रो-रोकर फरियाद कर रहा था । आँसू हलकान किये दे रहे थे । लम्बी-लम्बी हिचकियाँ बँध रही थी, जिनसे पसलियों को और सारे शरीर को बार-बार झटके लग रहे थे । इस तरह रोने से दम घोटने वाला जहरीला धुआँ जल्दी जल्दी पेट मे जाता था । उसका जी मिचलाने लगा । उसके प्राण अटकने लगे ।

प्राणों के भय से एक लम्बी हिचकी को रोकते हुये जो साँस खींची तो कई पल तक वह उसे अन्दर ही रोके रहा फिर सुबकियो मे वह धीरे धीरे टूटी । रो भी नही सकता । कोवायाशी की आँखो मे फिर पानी भर आया । कमजोर हाथ उठाकर उसने बेजान-सी अंगुलियो से अपने आँसू पोंछे ।

आँखो के पानी से अंगुलियों के दो पोर गीले हुये, उतनी जगह में तरावट आयी । कोवायाशी की काँटो मे पड़ी जबान और हलक को फिर से तरावट की तलब हुई ।-प्यास बगुले-सी फिर भड़क उठी । हठात् उसने अपनी आँसुओ से नम अंगुलियाँ जबान से चाट ली । दो अंगुलियों के बीच में बिखरी हुई आँसुओं की एक बूँद, उसकी जबान का जायका बदल गया और उसे पछतावा होने लगा—इतनी देर रोया, मगर बेकार ही गया । उसकी फिर से रोने की तबियत होने लगी, मगर आँसू अब न निकलते थे । कोवायाशी के दोनों हाथों मे ताकत आ गयी । नम आँखों से लेकर गीले गालो के पीछे कनपटियों तक आँसू की एक बूँद जुटा कर अपनी प्यास बुझाने के लिये वह अंगुलियाँ दौड़ाने लगा ।

आँसू खुश्क हो चले थे, और कोबायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

चक्कर आने लगे। गफ़लत–फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरह से चिढ उठी और उसकी चि विद्रोह मे बदलती गयी। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीर मे दमकने लगा—काबू से बाहर होने लगा। माथे की नसे तड़कने लगी। वह एक-दम अपने काबू से बाहर हो गया। दोनो हाथ टेक कर उसने बड़े जोर के साथ उठने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमजोरी की वजह से माथे मे फिर मूर्छा आने लगी। उसने सम्हाला—मन भी, तन भी। दोनों हाथ मजबूती से जमीन पर टेके रहा। हाँपते हुये मुँह से एक लम्बी सास ली, और अपनी भुजाओ के बल पर घिसटकर कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूमकर देखा—पीछे दीवार थी। उसने जिन्दगी की एक और निशानी देखी। कोबायाशी का हौसला बढ़ा। मौत को पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थ ने गर्व का बोध किया। परन्तु पीडा और जड़ता का जोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठाकर ऊँचे देखा, दीवार टूट गयी थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलबा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान ने उसकी कैसी रक्षा की। जीवन के प्रति फिर से आस्था उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवार की ऊँचाई के साथ-साथ उसका ध्यान और ऊँचा गया कि यह तो अस्पताल की दीवार है। अभी-अभी वह अपनी पत्नी को भर्ती कराके बाहर निकला था। सवेरे से उसे दर्द उठ रहे थे, नयी जिन्दगी आने को थी। पत्नी, जिसे बच्चा होने वाला था··········डाक्टर, नर्स, मरीजो के पलग······डाक्टर ने उससे कहा था—"बाहर जाकर इन्तजार करो।" वह फिर बाहर जाकर अस्पताल के नीचे ही कंकड़ो की कच्ची सड़क पर सिगरेट पीते हुये टहलने लगा था। आज उसने काम से छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था—जब अचानक आसमान पर कानों के पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अधा बना देने वाली तीव्र प्रकाश की किरणें कही से फूटकर चारों तरफ

बिखर गयीं। पलक मारते ही काले धुएँ की मोटी चादर बादलों से घिरे हुये आसमान पर तेजी से बिछती चली गयी। काले धुएँ की बरसात होने लगी। चमकते हुये विद्युत्कण सारे वातावरण में फैल गये थे। सारा शरीर झुलस गया; दम घुटने लगा था। सकडों चीखें एक साथ सुनायी दी थीं। इस अस्पताल से भी आयी होगी। दीवार उसी तरफ गिरी है और उन चीखों में उसकी पत्नी की चीख भी जरूर शामिल रही होगी ....कोवायाशी का दिल तड़प उठा। उसे अपनी पत्नी को देखने की तीव्र उत्कण्ठा हुई।

होश में आने के बाद पहली बार कोवायशी को अपनी पत्नी का ध्यान आया था। बहुत देर से जिसकी स्मृति खोयी हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिये राहत हुई। इससे उसकी उत्कण्ठा का वेग और भी तीव्र हो गया।

साल भर पहले उसने विवाह किया था। एक वर्ष का यह सुख उसके जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। दु ख यातना और संघर्ष के पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल से जीवन में आज की यह महायंत्रणा जुड़कर सुख-शान्ति के एक वर्ष को पानी की एक बूँद की तरह सोख गयी थी।

बचपन में ही उसके माँ-बाप मर गये थे। एक छोटा भाई था जिसके भरण-पोषण के लिये कोवायाशी को दस वर्ष की उम्र में ही बुजुर्गों की तरह मर्द बनना पड़ा था। दिन और रात जी तोड़कर मेहनत-मजूरी की, उसे शाहजादे की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया। तीन बरस हुये, वह फौज में भरती होकर चीन की लड़ाई पर चला गया और फिर कभी न लौटा।

अपने भाई को खोकर कोवायाशी जिन्दगी से ऊब गया था। जीवन से लड़ने के लिये उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी। वह निराश हो चुका था। नेवा मकान-मालकिन की लड़की उसके जीवन में नया रस ले आयी। उनका विवाह हुआ।......और आज उसके घर में एक नयी जिन्दगी आने वाली थी। आज सवेरे से ही वह बड़े जोश में था। उसके

सारे जोश और उल्लास पर यह गाज गिरी। जहरीले धुएँ की तपि ने उसके अन्तर तक को भून दिया था। वेदना असह्य हो गयी थी—और चेतना लुप्त हो गई।

अपनी पत्नी से मिलने के लिये कोबायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवान ने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो इधर गिरी है!—"नहीं !"

""कोबायाशी चीख उठा। होश में आने के बाद पहली बार उसका कण्ठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गयी। स्वर की तेजी से उसके सूखे हुये निष्प्राण कंठ में खराश पैदा हुई। फिर होश में आयी। कोबायाशी के लिये बैठा रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोश का दौरा कमजोर शरीर को झिझोरकर उठाने लगा। दीवार का सहारा लेकर वह अपने पागल जोश के साथ तेजी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग में दौड़ने की तेजी लिये हुये, कमजोर और डगमगाते हुये पैरों से वह धीरे-धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ बढ़ा।

फाटक टूटकर गिर चुका था। अन्दर मलवा-मिट्टी जमीन की सतह से लगा हुआ पड़ा था। कुछ नहीं—वीरान। जैसे यहाँ कभी कुछ बना ही न था। सब मिट्टी और खण्डहर। दूर-दूर तक वीरान—खाली। खाली। खाली। उसकी पत्नी नहीं है। उसकी दुनियाँ नहीं है। वह दुनियाँ जो उसने पच्चीस बरसों तक देखी, समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती। सपने की तरह यह काफूर हो चुकी है।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देखकर वह अपने को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया। इस महानाश में विराट शून्य को देखकर उसका अपनापन उसी में विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महाशून्य में लय हो गयी। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा। वह जोर-जोर से चीख रहा था—"मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"—मीलों तक उजड़े हुये हिरोशिमा नगर के इस खण्डहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की

आत्मा बनकर पागल कोवायासी चीख रहा था—"मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"

कैम्प अस्पताल में हजारों जख्मी और पागल लाये जा रहे थे। डाक्टरों को फुर्सत नही, नर्सो को आराम नही लेकिन इलाज कुछ भी नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें ? चारों ओर चीख-चिल्लाहट, दर्द, और यंत्रणा का हगामा ! "गोरा-दुश्मन ! खुदा-दुश्मन ! बादशाह-दुश्मन !" पागलपन के उस शोर मे हर तरफ अपने लिये दर्द था, अपने परिवार और बच्चो के लिये सवाल था, जिसकी यह सजा उन्हे मिली है। और दुश्मनों के लिये नफरत थी, जिन्होने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली।

अस्पताल के बरामदे में एक मरीज दहन फाउकर चिल्ला उठा— "मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"

अस्पताल के इंचार्ज डाक्टर सुजुकी इन तमाम आवाजो के बीच में खोये हुये खड़े थे। वह हार चुके थे। कल से उन्हे नीद नही, आराम नही,भूख-प्यास नही। ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह। उनका दिल, दिमाग और जिस्म थक चुका था। अभी थोड़ी देर पहले उन्हे खबर मिली थी, नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया। वे इससे चिढ़ उठे थे। क्यों नही, बादशाह और वजीर हार मान लेते ? क्या अपनी झूठी शान के लिये वे जापान को तबाह कर देंगे ? उन्हें दुश्मनो पर भी गुस्सा आ रहा था: इन्हे क्यों मारा गया ? ये किसी के दुश्मन नही थे। इन्हें अपने लिये साम्राज्य की चाह न थी। अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि ये अपने बादशाह के मजबूरन बनाये हुये गुलाम हैं, व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं। सस्कारो के गुलाम है।""""दुश्मन इन्हें मारकर खुश है। जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उनपर एटम बम बरसाये गये ? विज्ञान की नयी खोज की शक्ति आजमाने के लिये उन्हे लाखों बेजवान बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था ? क्या यह धर्म युद्ध है ?—सदादर्शों के लिये लड़ाई हो रही है ? एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतन्त्र करने की

योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है। ऐसी जिद है जो इन्सान को तबाह करके छोड़ेगी।··· ···और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं कि एटम का आविष्कार मानव-बुद्धि की सबसे बड़ी सफलता है।······ पागल कहीं के! ·· ···

नर्स आयी। उसने कहा—'डाक्टर, सैन्टर से खबर आयी है और नये मरीज भेजे जा रहे हैं।'

डाक्टर सुजुकी के थके चेहरे पर सनक भरी सूखी हँसी दिखायी दी उन्होंने जवाब दिया—"इन नये मरीजो के लिये नयी जिन्दगी कहाँ से लाऊँगा नर्स? विनाश-लोलुप स्वार्थी मनुष्य, शक्ति का प्रयोग भी नष्ट करने के लिये ही कर रहा है; फिर निर्माण का दूसरा जरिया ही क्या रहा? फेंक दो उन जिन्दा लाशो को, हिरोशिमा की वीरान धरती पर—या उन्हें जहर दे दो। अस्पताल और डाक्टरो का दुनियाँ में अब कोई काम नहीं रहा।"

नर्स के पास इन फिजूल बातों के लिये समय नहीं था। —नये मरीज आ रहे हैं, सैकड़ों अस्पताल मे पड़े हैं। वह डाक्टर पर झुँझला उठी—"यह वक्त इन बातों का नही है डाक्टर! हमे जिन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज है। एटम की शक्ति से हारकर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को मरते हुये देखते रहेंगे? चलिये, आइये, मरीजों को इन्जैक्शन लगाना है। आगे का काम करना है।

नर्स डाक्टर सुजुकी का हाथ पकड़कर तेजी से आगे बढ़ गयी।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'हिरोशिमा की धरती के लिये कोवायाशी के मन मे ममत्व जाग उठा,' क्योंकि—
   (क) यह धरती उसकी जन्मभूमि थी।
   (ख) अपनी धरती की रक्षा के लिये उसने बड़ा त्याग किया था।
   (ग) यह धरती उसके सुख सुविधाओं को देने वाली थी।
   (घ) उसका सर्वस्व इस धरती में ही कही था।

(च) उसे इस धरती के पुन: विकसित एव सम्पन्न होने की आशा थी।

२. निम्नलिखित कथनों में कुछ सत्य हैं और कुछ असत्य। केवल सत्य कथनों के सामने कोष्ठक में ✓ ऐसा चिह्न लगाइये –

(क) कोवायाशी की आत्मा महाविनाश को देखकर खुश हो रही थी। ( )

(ख) एटम बम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतंत्र कराने की योजना है। ( )

(ग) विनाश लोलुप स्वार्थी मनुष्य, शक्ति का प्रयोग भी जीवन नष्ट करने के लिये कर रहा है। (✓)

(घ) करुणासागर ईश्वर कोवायाशी के दिल में उमड़ने लगा। ( )

३. 'बहुत देर से जिसकी स्मृति खोई हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिये राहत हुई।' यह किसकी स्मृति थी ?

(क) अपने छोटे भाई की।

(ख) जापान के बादशाह की।

(ग) गोरे दुश्मनों की।

(घ) अपनी पत्नी की

(च) डाक्टर की।

४. फेंक दो उन जिन्दा लाशों को हिरोशिमा की वीरान धरती पर, या उन्हें जहर दे दो।' डा० सुजुकी के इस कथन में उनका कौन सा भाव निहित है।

(क) क्रोध।

(ख) घृणा।

(ग) तिरस्कार।

(घ) पश्चाताप।

(च) ग्लानि। ( )

५. सबसे बड़े मुंसिफ के 'हुजूर में लाठी और भैंस वाले न्याय के विरुद्ध वह रो-रो कर फरियाद कर रहा था।' सबसे बड़ा मुंसिफ किसको कहा गया है ?
६. कोबायाशी ने अपनी प्यास बुझाने के लिये क्या किया ?
७. 'उसके सारे जोश और उल्लास पर यह गाज गिरी' यह जोश और उल्लास किस बात का था ?
८. 'अमीरों और अफसरों को छोड़कर कौन ऐसा आदमी था, जो यह लड़ाई चाहता था ? अमीर और अफसर लड़ाई क्यों चाहते थे ? उत्तर ४० शब्दों में लिखिये ।
९. कोबायाशी के चरित्र की विशेषताएँ निम्न बिन्दुओं के आधार पर लिखिये और प्रत्येक का एक-एक उदाहरण भी दीजिये। उत्तर १०० शब्दों में हो।
भ्रातृ-प्रेम, देश-प्रेम, पत्नी-प्रेम, ।
१०. एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतंत्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है। उक्त विषय पर १५० शब्दों में अपने विचार लिखिये।

गुणवन्ती मौसी

रजनी पनिकर

जीवन-रेखा :

श्रीमती रजनी पनिकर का जन्म सन् १९२४ में लाहौर में नायर परिवार में हुआ। इन्होंने अपना जीवन पत्रकारिता से आरम्भ किया। पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित होने वाले 'प्रदीप' मासिक पत्र की ये सम्पादिका रहीं। आजकल आकाशवाणी में कार्यक्रम संचालिका हैं।

साहित्य-सर्जना :

रजनी पनिकर हिन्दी-कहानी के नवयुग की प्रमुख महिला कहानीकार हैं। इन्होंने प्रधानतया कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं। 'ठोकर 'पानी की दीवार', 'मोम के मोती', 'प्यासे बादल', 'सिगरेट के टुकड़े', 'काली लड़की', 'जाड़े की धूप', बैरंग लिफाफा',—आदि इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

कहानी-कला :

श्रीमती पनिकर की कहानियों में नारी-भावनाओं का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है, विशेष रूप से समाज की उच्च वर्ग की नारियाँ, शहरी जीवन की सुशिक्षित नारियाँ भीतर ही भीतर विभिन्न कुंठाओं की शिकार होती रहती है, इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इनकी कहानियों में खुलकर हुआ है।

गुणवन्ती-मौसी :

'गुणवन्ती मौसी' एक रेखाचित्रात्मक कहानी है। नारी-चरित्र के

लिए कहा गया है कि मनुष्य तो क्या, देवता भी उसे समझने में असमर्थ रहते हैं। यहाँ गुणवन्ती मौसी के रूप में एक ऐसा ही विचित्र नारी-चरित्र प्रस्तुत किया है।

गुणवन्ती मौसी अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग प्रदर्शनी देखने के लिए दिल्ली आती है अपने भरे पूरे परिवार के साथ—जिसमें १४ बड़े प्राणी और ५-६ बच्चे हैं—और ठहरती है एक ऐसी भांजी के घर पर जिससे उसका न किसी प्रकार का रिश्ता है, न परिचय। केवल एक सामान्य पड़ोसी की पुरानी पड़ोसिन होने के नाते ही वह मौसी बनकर चली आयी है, बिना बुलाये, बिना सूचना दिये, अजनबी, पर 'सुपरिचित' घर में।

कहानी में मौसी से सम्बन्धित रंग-रूप, बातूनीपन, मुस्कराहट, फरमायश, व्रत पूरा करने की विधि, नुमायश में जाने की तैयारी, विदा लेने आदि के जो वर्णन आये हैं उनसे कहानी अत्यन्त रोचक बन गयी है और व्यंग अपने पूरे रूप में निखर उठा है।

आँखों से अन्धे, नाम नयनसुखवाली उक्ति प्रायः हमारे दैनिक जीवन में चरितार्थ होती दिखाई देती है। पर हमारी गुणवन्ती मौसी ऐसी नहीं हैं। वह वास्तव में गुणों का भण्डार है। मनोविज्ञान का बड़े-से-बड़ा पण्डित भी इस बात से इनकार नहीं करेगा कि शरीर व्यक्तित्व का बहुत ही आवश्यक अंग है। गुणवन्ती मौसी जहाँ चार फुट दस इंच लम्बी हैं, वहाँ उनका वजन साढ़े तीन मन से जरा ही कम होगा। त्वचा का रंग ऐसा है, जैसे किसी ने मक्खन में केसर मिलाया हो। गोल मुख पर बड़ी बड़ी आँखें, उन पर सुनहरी फ्रेम की ऐनक जो 'दृष्टिदोष' के लिये नहीं लगाई गई है।

मौसी जब मुसकराती हैं तब उनका ऊपर वाला होंठ, जिस पर एक बड़ा सा काला तिल है, ऊपर-नीचे उठता है, फड़कता रहता है, देखने-वालों का हलका सा मनोरंजन करता है। गुणवन्ती मौसी बहुत बातें करती हैं, एक बार शुरू हो जाती हैं तो उन बातों का अन्त नहीं होता। बातें करने के साथ-साथ मुख पर हर भाव के साथ एक नई प्रतिक्रिया होती है। जब हँसती हैं तब उनका दोहरा शरीर आठ तह पा जाता है।

गुणवन्ती मौसी हमारी माँ की सगी, चचेरी, ममेरी या किसी तरह की 'गाँव बहन' भी नहीं है। वह हमारे एक तीन महीने पुराने पड़ौसी की पड़ौसिन रह चुकी है। एक बार लाहौर में प्रदर्शनी हुई थी, उसमें वह आई थी, पड़ौसियों ने गुणवन्ती मौसी से परिचय करवा दिया था। एक ही बार हमारा नमस्कार हुआ था।

कुछ मास पूर्व दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग-प्रदर्शनी हुई थी। तब जिस घर ने कभी मेहमानों का मुख नहीं देखा था, वहाँ भी मेहमान आये थे। हमारे यहाँ की बात ही दूसरी है। मेहमानों से घर भरा पड़ा था। उस शाम को अधिक सर्दी नहीं थी। रात्रि के पौने नौ बजे के

लगभग समय होगा। मैं चाय पी रही थी। उसी समय श्रीमती गुणवन्ती मौसी ने प्रवेश किया। हाथों में सोने की बीस-बीस चूड़ियाँ गले में पाँच-छः हार—क्षमा कीजियेगा, उतनी जल्दी में मैं पूरी तरह से हारों की गिनती नहीं कर पाई, कम गिनाने से हमारी मौसी की प्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा। मौसी ने आते ही मुझे गले लगा लिया। सच मानिये, उन्होंने मुझे क्षण-भर का समय नहीं दिया कि मैं उठकर उनका स्वागत करूँ।

"अरे। तुमने पहचाना नहीं, अच्छी भाजी हो?"

मेरी सगी मौसी कोई नहीं। फिर वह कौन हैं? किसी भाभी की माँ भी नहीं हैं।

इतने में उनका बड़ा लड़का बिस्तर उठाये आगे बढ़ा। वह मुसकराकर बोलीं—"बेटा, बहन को नमस्कार करो, तुम्हारे जीजा शायद बाहर गये हैं, झट से सब सामान अपने-आप ऊपर ले आओ।"

तब कहीं मुझे आभास हुआ और दिमाग में यह बात कौंधी कि यह यहाँ रहने आई हैं।

मौसी की जुबान चलती ही रही, एक क्षण भी रुकी नहीं।

जो कुछ उन्होंने कहा था, उसका दो शब्दों में आशय यही था कि अमृतसर के गुरुद्वारे मे वह अपने सातवें पुत्र, बड़ी लड़की के लड़के और अपनी तीसरी लड़की के लड़के के मुण्डन करवा उन्हें माथा टिकाने के लिये ले गई थीं कि उनकी मुलाकात मेरी बुआ की ननद से हुई और वहीं से उन्होंने मेरा पता पाया। हाँ, पोस्टकार्ड तो परायों को लिखा जाता है, मैं भला कोई पराई थी? फिर कौन वह महीना-दो-महीना रहने आई थी, यही दो-चार दिन की बात थी, क्या हुआ कि कुछ मिलाकर चौदह बड़े प्राणी और पाँच-छः बच्चे थे।

मौसी ने मुझे तो हाथ से पकड़कर अपने पास बैठा लिया, कमरे के भीतर उनका लड़का-लड़की या उन लड़के-लड़कियों के पति-पत्नी, या फिर कोई बच्चा बारी-बारी से आने लगा। मौसी, जिनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था, बड़ी तत्परता से मेरा परिचय पुत्र-पुत्रियों, नाती-

पोतों से करवा रही थी। किसी की मैं बुआ थी और किसी की मैं मौसी, बड़ी बहन और छोटी बहन।

उस समय मुझे लग रहा था, शायद मैं कोई सिनेमा की फिल्म देख रही हूँ वरना लोगों की इतनी भीड़, जिन्हें मैंने जन्म-भर देखा तक नहीं कैसे एक के बाद एक बढ़ती ही जा रही थी। मुझसे किसी तरह की आज्ञा लेने या पूछने की आवश्यकता गुणवन्ती मौसी ने नहीं समझी। वह स्वयं ही सबको बतलाने लगीं कि वह क्या-क्या करें। उनके कथनानुसार बड़े लड़के ने ड्राइंग-रूम का कारपेट खोल कर दिया, सोफे की कुर्सियाँ दूर-दूर हटा दी और वहाँ अपने बहन-भाइयों के बिस्तर बिछा दिये।

जब बिस्तर तक नौबत पहुँच चुकी थी तब मुझे ख्याल हुआ कि इनसे कुछ खाने के लिये भी तो पूछना चाहिये।

मौसी ने मेरे पति के बारे में अपने-आप ही ज्ञान अर्जित कर लिया। मैं हैरान थी। यह स्त्री यदि इतनी कुशाग्र बुद्धि रखती है तो इसे कहीं-न-कहीं मिनिस्टर होना चाहिये था।

खाने के लिये पूछने पर वह बोली—"मेरा तो व्रत है, मैंने सुबह से अब तक पानी नहीं पिया।"

एक छोटा-सा बच्चा बोला—"नानी, तुमने दूध तो पिया था।"

मौसी को बच्चे की उस बात से कुछ बुरा नहीं लगा। वह झेंपी भी नहीं, मुसकराकर बोली—"बेटी, पाव-भर बर्फी मँगवा लो, मैं पानी पीऊँगी, कोरा पानी मेरे कलेजे में लगेगा।" आप यह न सोचें कि मौसी का व्रत था, इसलिये उन्हें बर्फी की आवश्यकता पड़ी। दूसरे दिन सुबह भी उन्होंने बर्फी खाकर ही पानी पिया। यही उनका नियम था।

मौसी ने बड़े बेटे से कहा—"बहन से शरमाता क्यों है, तुझे चाय पीने की आदत है तो कहता क्यों नहीं? तेरी बहन पढ़ी-लिखी है, अभी देख कैसे चटपट तुम लोगों के लिये चाय और नाश्ता बनाती है।"

मैं थककर चूर थी। उसी दिन संध्या को मेहमानों को विदाकर चुकी थी। घर में नौकर केवल एक था, वह भी मेहमानों के लिये खाना

बना-बनाकर तग आ चुका था। मै हतप्रभ-सी मौसी के मुख की ओर देख रही थी। मौसी बड़ी चालाकी से मुझसे कहलवा चुकी थी कि खाना अभी बना जाता है। इतने में मेरे पति आ गये। उनका परिचय मौसी ने खुद ही अपने परिवार से किन शब्दो मे करवाया, यह मैं नही दोहराऊँगी।

मैं रसोई-घर मे जुटी थी, वहाँ मेरे पति आये और धीरे से दवे स्वर में बोले—"मैं ऐसे मेहमानो से बाज आया, तुम इन्हें किसी होटल मे ठहरने के लिये कहो।"

अभी बात उनके मुख मे ही थी कि मौसी उनकी, यानी मेरे पति की बलाएँ लेती हुई कमरे के भीतर आ गई।

मैं चुपचाप काम मे जुटी रही। मौसी ने व्रत सम्पूर्ण किया, आधा सेर वर्फी खाई, तीन पाव दूध पिया और रात्रि-भोज, जो साढे ग्यारह बजे खाया, के लिये पूरी और हलवे की फरमायश कर दी।

मेरे छोटे भाई-बहन, यानी मेरी मौसी के लड़के-लडकियाँ, अपनी माँ की आज्ञा मान, उस घर को अपना ही घर समझ जहाँ-तहाँ फर्श पर पानी फेंकने लगे। रात का खाना खाने तक वे लोग एक दर्जन शीशे के गिलासों को ठिकाने लगा चुके थे। मेरी मुश्किल की कुछ मत पूछिये, मैं तो पति से आँखे भी नही मिला सकती थी, क्योकि वह बार-बार मौन रूप से डाँट रहे थे कि यह मेरा ही दोप है जो हमारे घर को लोग धर्मशाला बनाये हुए है।

भोजन हो चुकने के बाद मौसी ने कहा—"इन बच्चों को तो मलाई खाये विना नीद ही नही आती।" अतिशयोक्ति न समझें तो सब बतलाऊँ कि उस रात हलवाई के यहाँ से एक सेर मलाई और पाँच सेर दूध आया।

मेरे पति ने घर छोड़ जाने की धमकी भी चुपके-से दे दी। गुणवन्ती मौसी की बुद्धि की प्रशसा किये बिना मैं न रह सकूँगी। उन्होंने झट से कहा "हम मौसी-भाजे पास-पास सोयेंगे, हमने बहुत दिनों से एक दूसरे से सुख-दुख की बातें नही की है।" इस बात को मैं दोहराऊँगी नही

कि जीवन में उनसे मैं प्रथम बार मिल रही थी।

मौसी कितनी देर बात करती रही, मुझे याद नहीं। मैं थककर चूर थी, सो गई। दूसरे दिन फिर वही झमेला शुरू हुआ। मौसी की अनुभवी आँखों ने मुझे और मेरे पति को पाँच मिनट भी एकान्त में बात नहीं करने दी। कहीं हम दोनों मिलकर उन्हें घर से निकाल न दें!

नाश्ते पर कितनी पूरियाँ बनी या कितनी जलेबियों की फरमायश मौसी ने की, उनका ब्योरा न देकर केवल इतना कहूँगी कि नुमायश में साथ ले जाने के लिए भोजन की माँग शुरू हुई।

मौसी का बड़ा लड़का बोला—"बहन जी के घर का खाना बहुत अच्छा है।"

मौसी का सर्वांग खिल उठा—"वाह। तुमने बहन के बनाये पराठे तो खाये नहीं। एक बार खाओ तो याद रह जाएँ।"

मेरे बनाये पराठे अच्छे होते है, यह मौसी ने कैसे जाना, इस विज्ञान का क्या नाम हो सकता है? यह न 'टैलोपैथी है' और न 'ऐलोपैथी'! मेरे ख्याल में इसे 'गैस-पैथी' कहना चाहिये।

मौसी का नहाना कैसे हुआ और कैसे वह नुमायश के लिए तैयार हुईं, यह बताने की जरूरत नहीं।

मेरे नौकर ने यह बात बहुत धीरे से कही कि नुमायश में बहुत अच्छा खाना मिल जाता है। मौसी ने कहा—"परदेश में कौन भरोसा? बेटी, तू कोई तीस-पैंतीस पराठे सेक दे, अधिक कष्ट मत कर।"

हमारे घी की शामत तो आनी ही थी, परन्तु पड़ौसियों का घी भी खतम हो गया। सब बाँधकर मौसी को सवारी की चिन्ता हुई। वह अपना सुनहरी चश्मा चढ़ाती हुई बोलीं—"मैं तो बसों में चढ़ी नहीं। ताँगे के लिये वह जगह बहुत दूर है। केवल एक साधन रह गया है, मोटर। हमारे यहाँ मोटर न होने पर मौसी ने एक व्याख्यान दे डाला। मैं अपने पति के डर के मारे घर के भीतर चली गई, क्योंकि मौसी बरामदे में लेक्चर दे रही थी।

हमारे पड़ोसियो के पास मोटर है। दुर्भाग्य कि उन्होंने उसे उसी समय बाहर निकाला। उसकी सफाई होते देख मौसी बोली— 'अरे बेटी, पड़ोसियों की मोटर और अपनी में कोई भेद होता है? फिर तुम तो बतला रही थी कि हमारे पड़ोसी बहुत अच्छे हैं, बिलकुल भाइयो की तरह। मेरे भी तो बेटे की तरह हुये। मौसी को नुमायश तक पहुँचा न देंगे?"

पड़ोसी बेचारे झेंपकर रह गये। इससे पहले कि वह कुछ बोलें, मौसी उनके लिये फैसला सुना चुकी थी। मरते क्या न करते! उन्होंने मौसी को और उनके परिवार को दो बार मे नुमायश तक पहुँचाया।

मौसी के बहुत आग्रह करने पर भी मैं उनके साथ नुमायश न जा सकी।

गुणवन्ती मौसी के गुणों का बखान कहाँ तक करूँ। दो दिन दिल्ली रहकर जब वह वापस जाने लगी तब मेरे हाथ पर 'दो रुपये' रखकर बोली—"बेटी, क्षमा करना, तुम्हें बड़ी तकलीफ दी है। लेकिन, भला कही अपने आदमियों से तकलीफ मानी जाती है। तुम भी तो हम लोगों से मिलकर प्रसन्न हुई होगी।"

धीरे-धीरे नमस्कार-आशीर्वाद समाप्त हुआ। दो रुपये मेरी हथेली पर थे। मौसी सीढ़ियाँ उतर कर फिर लौट आई। मेरा दिल धक् से रह गया। कही इन्होने इरादा तो नही बदल लिया है। वह हाँफती हुई आई और बोली—'यह चवन्नी ले लो, बेटी, अपने नौकर को दे देना।'

वह फिर मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई, सकड़ो आशीर्वाद देती हुई सीढ़ियाँ उतर गईं। कहने की आवश्यकता नही कि हमारे पड़ोसी की मोटर बाहर खड़ी थी, जिसमे किसी तरह लदकर आधे लोग एक बार और आधे दूसरी बार गये।

आप भी गुणवन्ती मौसी के गुणों की प्रशंसा किये बिना न रह सकेंगे हमारे पड़ोसी आज तक मौसी को याद करते हैं—"बड़ी हँसमुख थी, बड़ी ही बेतकल्लुफ थी। भेद-भाव बरतना वह बिल्कुल नही जानती

थीं।" पड़ोसियों को उसी मे सतोप है ।

कभी-कभी मन मे विचार आता है कि मौसी से वदला लूँ, परन्तु चोदह-पन्द्रह लोग आखिर कहाँ से इकट्ठे करूँ, अभी तक यह नही समझ पाई।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'आँखों से अन्धे नाम नयनसुख' कहावत का सही अर्थ क्या है ?
   (क) विपरीत कार्य करना ।
   (ख) छोटी बात को बढ़ा कर कहना ।
   (ग) शेखी मारना ।
   (घ) गुणों के विरुद्ध नाम होना ।
   (च) मन में कुछ और वाहर कुछ और होना । ( )

२. क्या कारण था कि लेखिका अपने पति से आँखें नही मिला सकती थी ?
   (क) नारिसुलभ लज्जा के कारण ।
   (ख) पति की इच्छा के विपरीत कार्य करने के कारण ।
   (ग) मौसी की उपस्थिति के कारण ।
   (घ) काम में व्यस्त रहने के कारण ।
   (च) पति से मनमुटाव होने के कारण । ( )

३. 'मैं हतप्रभ सी मौसी के मुख की ओर देख रही थी । लेखिका के 'हतप्रभ' होने का क्या कारण था ?

४. क्या कारण था कि पति-पत्नी दोनों मेहमानों से परेशान थे, तब भी उन्होंने उनकी हर फरमाइश पूरी की ?

५. 'पड़ोसी वेचारे झेप कर रह गये ।' पड़ोसी की झेप का क्या कारण था ?

६. 'मौसी सीढ़ियों से उतर कर फिर लौट आई ।' मौसी के लौटकर आने की, लेखिका पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?

७. आज भी पड़ोसी मौसी को उनकी किन विशेषताओं के लिये याद करते है ?

८. गुणवन्ती मौसी ने लेखिका के पति को अपना और अपने परिवार के अन्य सदस्यो का परिचय क्या-क्या कहकर कराया होगा ? स्वय की कल्पना से ७५ शब्दो में उत्तर लिखिये।

९. लेखिका मौसी से बदला लेना क्यो चाहती थी ?

१०. नीचे लिखे मुहावरो का अपने वाक्यो मे प्रयोग कीजिए।
खिल उठना, धमकी देना, बाज आना, नौबत पहुँचना।

: ८ :

नौकरी पेशा

कमलेश्वर

जीवन-रेखा :

श्री कमलेश्वर का जन्म मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) मे सन् १९३२ ई० में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर एम० ए० तक अध्ययन किया। बचपन से ही उनकी साहित्यिक अभिरुचि थी और लिखने पढ़ने का भी शौक था। उनकी प्रथम कहानी 'कामरेड' सन् १९५१ मे प्रकाशित हुई। इलाहाबाद मे इन्होने स्वतत्र प्रकाशन सस्था भी प्रारम्भ की।

नाटकों एवं उपन्यासों की रचना भी उन्होंने की है किन्तु यह उनका मुख्य रचना क्षेत्र नही है। उनकी विशेष प्रवृत्ति कहानी की ओर रही है। उन्होंने 'नई कहानियाँ', और 'सारिका', जो कहानी साहित्य की प्रमुख मासिक पत्रिकाएँ हैं, के सम्पादक का कार्य किया है जो उनकी रुझान का परिचायक है। कमलेश्वर की गणना नयी पीढ़ी के कहानीकारो में की जाती है।

साहित्य-सर्जना :

इनके प्रमुख संग्रह : 'कस्बे का आदमी,' 'निरवसिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'मांस का दरिया' आदि हैं।

उपन्यासो में : इनकी निम्न तीन रचनाएँ हैं—

'डाक बंगला', 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ', 'लौटे हुये मुसाफिर'।

नाटकों में : 'अधूरी आवाज', 'रेगिस्तान', उपलब्ध है।

कहानी-कला :

अपनी कहानियो मे इन्होंने आदर्श से कही अधिक यथार्थ चित्रण पर बल दिया है। उन्होने सामाजिक कहानियो मे समकालीन जीवन की उलझनो को चित्रित किया है। उनमे मध्यम वर्ग के समाज की समस्याओं को लिया है। कथानक की मौलिकता और जीवन दृष्टि की प्रामाणिकता नये कहानीकारो की विशेषता है, वह इनमे भी है। उन्होंने अपने चारों तरफ के जीवन को नयी दृष्टि से देखा और समझा है और उसी आधार पर पात्रों मे व्याप्त कुंठाओ, विकृतियो, सुखदुखात्मक अनुभूतियों को मनोविज्ञान के साथ व्यग के प्रयोग से भली प्रकार उभारा है

नौकरी पेशा :

ग्राम के स्वतत्र व्यवसायी किस प्रकार कस्बों व नगरों की ओर आकर्षित होकर असहाय बन जाते हैं इसका उल्लेख कहानी में है। कस्बों का जीवन कितना बनावटी व विडम्बना पूर्ण होता है इसको बाबू राधेलाल सिद्ध कर रहे हैं। घी के प्रश्न को लेकर लाला रामभरोसे से उलझ गये। लाला रामभरोसे सद्वृत्ति एव सदाशयता वाले व्यक्ति थे। उन्होंने यह सब होते हुये भी अपने गाँव के ही रहने वाले राधेलाल को बेरोजगारी की स्थिति मे रोजगार दिलवाने मे सहायता की। विरोधी को जीतने के लिये उसका अहित करने की आवश्यकता नही है। उसके विरोध की शान्ति विरोध से नही हुआ करती। उसका स्थायी उपचार सदाशयता एव सद्वृत्ति ही है।

गाँव के उखड़े हुए लोगों को कस्बा पनाह देता है। यहाँ की जिन्दगी गाँव की आबादी को चुम्बक की तरह खींचती है। इधर तीस-चालीस बरसों से कई महाजन-परिवार यहाँ आ चुके है और उनकी देखा-देखी और आते चले जा रहे हैं। इन लोगो मे जल्दी से जल्दी कस्बाती बन जाने की होड सी लगी रहती है। कस्बाती यानी गाँव के लाला से बाबू बन जाने की होड़। राधेलाल के बाबा को लोग लाला ही पुकारते रहे और बाप को भी यही सम्बोधन मिला, क्योकि वे परचूनी की दुकान चलाते थे। पर राधेलाल ने दसवाँ पास किया था और बगुले की चोंच मारने की तरह तर्जनी से टाइप करना भी सीखा था, इसलिए उसे बाबू का खिताब मिलने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। अब वह दुकान पर क्या बैठते, नौकरी को गले लगाया। बाबू राधेलाल कह कर कोई पुकारता, तो जैसे उनका रोम-रोम पुलक उठता और उन्हे लगता कि जीवन की सार्थकता तो अब हाथ आयी है।

उस दिन इतवार था। पहली तारीख के बाद यह पहला इतवार था। इसलिए घर-गृहस्थी का थोड़ा काम भी सिर पर था। फिर भी बाबू राधेलाल काफी इत्मीनान से अगले हफ्ते के लिए अपने पुराने पम्प जूतो को साफ कर रहे थे। पास खटिया पर कोट रखा था, जिसे उनके आवारा लड़के ने मैट्रिक तक पहनकर छोड़ा था और जिसकी आस्तीनों मे कोहनियों की जगह छेद के अनुसार छोटे-बड़े प्योंदे लगे थे। एक मर्तबा उलटवाने के कारण ऊपर वाली जेब बायीं से दाहिनी ओर आ गयी थी, जिसमे फाउन्टेन पेन-नुमा मोटी पसिल हर वक्त लगी रहती और एक छोटी-सी निहायत गन्दी गाँधी डायरी पड़ी रहती थी।

आज उनके लिये एक काम मुख्य था, सफाई। क्योकि वह जरा कायदा पसन्द आदमी है और उनको हफ्तेवार सफाई उसी कायदा

पसन्दी की योजना का एक अंग है। सफाई तीन चीजों की होनी थी, जूते, कोट और सायकिल।

अभी एक जूता साफ हो पाया था कि बाहर से किसी ने आवाज लगायी। छोटी लड़की ने आकर खबर दी दफ्तर का चपरासी आया है। उनकी भौंह में एक हल्का-सा बल पड़ा। बाहर पहुँचे, तो चपरासी ने कहा—आपको साहब ने अभी बुलाया है।

—मैं नहीं जा सकता इस वक्त!—बाबू राधेलाल ने पता नहीं क्यों अपनी आदत के खिलाफ एकदम बिगड़ कर कहा।

—तो यही कह दूं?—चपरासी ने जैसे उनकी हैसियत और उनकी बात को तौलते हुए व्यंग किया।

राधेलाल थोड़ा-सा सकपकाये और अपनी आदत के मुताबिक नाक सिकोड़ कर उन्होंने जरा सोचने की कोशिश की, चपरासी की तरफ देखा और आजिजी से बोले—तुम काहे को नाराज होते हो, अब सोचो न जरा—एक तो दिन मिलता है, उसमें भी यह खिट-खिट······न ठीक से पूजा-पाठ, न······अच्छा देखो······तुम जरा-सा बरा जाओ। ······कह देना कि घर पर नहीं मिले, कह आया हूँ।

चपरासी एक क्षण खामोश रहा, तो बाबू राधेलाल सोच में पड़ गये, नाहक इस पर बिगड़ पड़े। भला इसका कौन-सा कसूर था? वह तो खुद बेचारा हुकुम का बन्दा है। साहब ने कहा, बुला लाओ, यह चला आया। बिगड़ी बात और भी सभालने की गरज से बोले—तुम बस इतना कह देना। नहीं तो तुम भी दिन-भर दफ्तर में अटके रह जाओगे।

—हमारे लिए कोई फरक नहीं पड़ता, पर साहब को इत्तला कर दूंगा कि बाबू जी नहीं मिले, घर में खबर कर दी है।

—बस-बस! सब सभल जायगा इतनी बात से।—और यह कहते-कहते वह चपरासी की सायकिल का हैंडिल पकड़े-पकड़े उसे सड़क तक छोड़ आये।

घर में घुसते ही उन्होंने कोट की ऊपर वाली दाहिनी जेब से गांधी डायरी निकाली और खोलकर देखा। शायद साहब ने पहले ही हुक्म दिया हो और उनकी याद से उतर गया हो। ······रविवार ६ तारीख वाला पन्ना खोला, उस पर कार्यक्रम नोट था।

(१) सफ़ाई करना है, (२) मन्दिर जाना है, (३) राशन लाना है, (४) सम्भव हो तो शाम को साहब के घर हो आना है या तिवारी कन्या पाठशाला के मैनेजर साहब से मुलाकात कर आना है, (५) आज जल्दी सो जाना है।

उन्होंने जेब से मोटी पैन्सिल निकाल कर डायरी के उसी पन्ने पर नोट किया, सुबह साहब से मिलने गये और उसे उसी दाहिनी जेब में रख दिया।

पत्नी ने उन्हें इस तरह ख्याल में डूबा और डायरी पर नोट करते देखा, तो कुढ़ के भुनभुनायी— कुसमा के ब्याह में तुम्हारे सोचने के लिये अलग कोठरी का इन्तजाम करा दूँगी।······कौन आया था।

—चपरासी था, साहब ने बुलाया है,—राधेलाल बोले।

—तो जाओ न। साहब की गुलामी से फुरसत मिले, तो घर को देखना तुम्हें खुद इसमें मजा आता है। जाके दफ्तर में बैठ गये, सब काम-धन्धे से बरी।······उस लाड़ले ने इम्तहान का बहाना बना रखा है। ······मेरी बला से, चाहे कुछ हो या न हो।······

—मैंने तो चपरासी से साफ कहला दिया कि मैं नहीं आ सकता। कौन मुस्तकिल नौकरी है।······भले छूट जाय। दूसरी देख लूँगा। —राधेलाल ने कहा और जैसे उन्हें सचमुच महसूस हुआ कि इस वक्त चपरासी से साफ इन्कार कर देना था, यह भी कोई बात हुई। आखिर को अपना घर कब देखे, एक तो दिन मिलता है। और दूसरा जूता साफ करने में मशगूल हो गये।

सफ़ाई के बाद उन्हें पैरों में डाल और कोट, पतलून पहनते हुये पत्नी से बोले—जरा देख ही आऊँ। असल बात यह है कि साहब का मुझ

पर जितना इतमीनान है, उतना बड़े बाबू पर भी नही है। मेरे टाइप से बहुत खुश हैं। कहते थे, इतने जिले घूम आया हूँ पर तुम जैसा होशियार टाइप बाबू नही मिला। बड़ा अपनापन मानते हैं। हमेशा घर के आदमी की तरह तुम कह कर बात करते है।

बहुत ऊँचा स्वाभिमान जैसे अंधा होता है, वैसे ही पति की प्रशंसा से किसी भी पत्नी का स्वाभिमान ऊँचा उठकर उसे अंधा कर देता है। कुछ ऐसा ही इस वक्त हुआ। और राधेलाल सड़क पर सायकिल लाये, उसकी कील पर एक पैर रखकर लगड़ी मुरगी की तरह दस बारह कदम फुदके और चढकर दफ्तर चले गये।

शाम को वापस आये, तो मुँह सूखा हुआ था। जिस चबूतरे का सहारा लेकर सायकिल से उतरते थे, उसके ठीक कोने पर गोबर रखा था, सो पैर रखते-रखते बिदक गये और गिरती दीवार की तरह मय सायकिल सड़क पर पसरते-पसरते जरा-सा बच गये। पैजामे का मोहरा क्लिप से बन्द था, इसलिये बचत भी हो गयी, नही तो मुँह के बल गिरते। सायकिल भीतर रखी ही थी कि देखा, लाला रामभरोसे बैठक में बैठे हैं। लाला रामभरोसे अपनी परचूनी की दूकान छोड़-छाडकर बाबू बनने की नीयत से एक फौजदारी के मुख्तार साहब के मुन्शी हो गये थे। तहसील के तख्तों पर बस्ता रखकर बैठते थे। मुख्तार साहब के मुवक्किलो का हिसाब-किताब और मिसलें वगैरा सब उन्ही के पास रहती थीं और वह दिल में सरकारी नौकरी से गैर सरकारी नौकरी को बेहतर समझते थे, पर सरकारी नौकरी की बड़ाई इसीलिये करते थे कि देखा-देखी उनको यह यकीन हो गया था कि यहाँ कस्बे में जिसे बुरा समझो उसे अच्छा कहो। सो घुसते ही लाला बोले—काहे राधे, इतवार को भी दफ्तर गये थे? हमारा तो ख्याल है कि सरकारी नौकरी में हजारों आराम हैं। इससे बढ़कर राजसी नौकरी दूसरी नही। पर तुम तो जिस दफ्तर में पहुँचे, मानो सब कार-बार तुम्हारे ही ऊपर आ गया।...... काहे को जान दिये डाल रहे हो? कितने दिन की जगह मिली है?

—दद्दा, अगले हफ्ते तक एवजी है। स्टेनो बाबू अगले शुक्र तक आ जायेंगे, बस फिर तो कही और काम ढूंढना है। —बाबू राधेलाल ने जवाब दिया।

—तब काहे को चिपटे हो इस तरह ? कौन तुम्हारी मुस्तकिली हो रही है, जो दिन-रात लगे हो ? अरे, अपने काम से काम। छुट्टी के दिन छुट्टी, काम के दिन काम।

—दफ्तर ये भी बढिया है, दद्दा, वो तो आज साहब का प्राइवेट काम था थोड़ा सा, नही तो बडे आराम का दफ्तर है।

—अरे, तुम तो हमेशा ऐसे ही कहते रहे। आज तक कम-से-कम बीस जगह रह आये हो, किसी दफ्तर की बुराई नही सुनी हमने तुम्हारे मुँह से।

और सचमुच बात ऐसी ही थी। बाबू राधेलाल क्लर्क, टाइप बाबू, लायब्रेरियन और न जाने क्या-क्या रह चुके थे, यानी कोई महकमा ऐसा न था, जिसमें उन्होंने कुछ दिन न गुजारे हों। चुंगी से लेकर जजी, कलक्टरी तक गये थे और स्वामी जी के भण्डारे के हिसाब-किताब रखने से लेकर शहर के पुस्तकालय के लायब्रेरियन तक रह चुके थे। सरकारी, गैर-सरकारी, सभी महकमों के लिये बाबू राधेलाल स्टेण्डिग कार्यकर्ता थे। जब जिस महकमे को उनकी जरूरत पड़ती, बुलवा लेता। खाली होते तो चले जाते, नही तो इन्तजाम करा देते। पहुँच भी उनकी इतनी थी कि नौकरी चाहने वाले ताजे नौजवानो के सामने उन्हें ही लिया जाता, और बात भी ठीक थी, क्योंकि किसी दफ्तर मे लीव वेकेन्सी हुई, तो नया आदमी रखकर कोई क्या करे और फिर बाबू राधेलाल की इक्कीस बरस की साख थी।

शहर भर के ऐसे ठिकाने जहाँ-जहाँ नौकरी मिल सकती थी, सब की खबरें उनके पास रहती थी कि कौन-से बाबू कब और कितने दिन की छुट्टी पर जा रहे है, कौन छुट्टी बढायेगा या उनके आने पर फिर कौन जा रहा है।

कोई नयी जगह होती, तो वह अपने को उसके काबिल न पाते, क्योंकि उसमे शुरू से सर्टिफिकेट वगैरा दिखाने पड़ते, डाक्टरी जरूर होती और उनके मुताबिक लाखो झझट होते, जो उनके बस के नही। इसलिये हर दफ्तर को वह प्यारे थे और उन्हे हर दफ्तर प्यारा था। किसी महकमे की बुराई आज तक उनके मुँह से नही सुनायी पडी। पता नहीं, कब किस महकमे की उन्हे जरूरत पड़ जाय। कोई हफ्ते भर की छुट्टी जाय तो, और चार महीने की जाय तो, बाबू राधेलाल यकसाँ जोश-खरोश से नौकरी को सिर ओढ़ लेते थे।

कोई चपरासी नाराज हो जाय, तो रात की नीद हराम हो जाती थी, कोई साथ वाला जोर से बात कह दे, तो दिल बैठने लगता था। खुद बहुत धीमे बोलते थे, कायदा पसन्द और सलीकेमन्द आदमी थे और अपने को नौकरी-पेशा कहने मे गर्व का अनुभव करते थे। कोई पूछे कि, कहिये, क्या काम करते हैं ? तो बजाय यह कहने के कि जजी मे नकल-नवीस हैं या तहसील मे पचायत क्लर्क है, वह बड़े विनय से कहते, जो नौकरी पेशा आदमी हूँ। और उन दिनों जिस दफ्तर मे काम करते, उसके आराम, वहाँ के बाबू लोग, अफसर और जनता के जीवन में उस महकमे की अहमियत पर पूरी ईमानदारी से वे एक बड़ा बयान दे डालते। उनकी इसी आदत के कारण लोग उन्हे एक व्यर्थ सम्मान की दृष्टि से देखते थे, न अच्छा कहते थे, न बुरा।

लाला रामभरोसे ने दफ्तर की बात छेड़ दी, तो फौरन यह भी ख्याल आया कि अभी बाबू राधेलाल अपने दफ्तर के अनुभवो का पचड़ा ले बैठेंगे सो उन्होंने फौरन बात का रुख पलटते हुये कहा—भाई, मैं इसलिये आया था कि कल रात को नाती की खुशी मे भोज है। बिरादरी मे बुलउआ है तुम थोड़ा वक्त निकालो, तो मेरी मुश्किल हल हो जाय।

—हाँ, पहला नाती है कि मजाक है। दिल खोल के भोज दो, दद्दा ! रही मेरी, सो जो काम सौंप दोगे, अपनी कोशिश-भर ठीक ही

कर दूँगा। बाबू राधेलाल ने जवाब दिया।

—तुम कल चार बजे शाम से आ जाओ, बस।

—बहुत ठीक। साहब से कहकर एक घण्टे पेश्तर आ जाऊँगा।

राम राम हुई और लाला राममरोसे निश्चिन्त होकर उठ गये। राधेलाल ने बैठक के किवाड़ लगाए, जेब से गाँधी डायरी निकाली और उस पर नोट किया, कल शाम चार बजे दद्दा के घर भोज का इन्तजाम करने जाना है। एक घण्टा पेश्तर छुट्टी के लिये बड़े बाबू से सुबह कहना है।

डायरी जेब मे डाली और भीतर पहुँचे, तो पत्नी के कुछ कहने मे पहले उन्होने जेब से दो कच्चे नीबू निकाल कर घरोंची पर रखते हुये कहा—ये दफ्तर की बगिया के हैं। माली कहने लगा, बाबू, इतना रस है इनमे अभी कि पकने पर तो मुसम्मी को मात करेंगे। वह तो चार-पाँच दे रहा था, हमने कहा, दो काफी हैं।

और वास्तविक बात यह थी कि चलते-चलते वह माली की नजर बचाकर फुर्ती से दो ही तोड़ पाये थे, अगर आस्तीन काँटो मे न फँस गई होती, तो शायद एक-दो और मार देते।

पत्नी को जरा ठीक देखा, तो दूसरी जेब से रिबन की गिर्रियाँ निकालते हुये बोले—ये लो, तुम्हारा डोरा लपेटने के काम आ जायेगी।

पत्नी ने देखा तो 'हूँ' करती हुई बोली—इनमे डोरा लपेटा जायगा? ये किस काम की हैं। कुसुमा कब से एक पेन्सिल के लिये कह रही है।

—पेन्सिल रोज-रोज थोड़े ही धरी है। मिल जायगी पेन्सिल भी, लाने को चाहे जो ले आऊँ कोई चूँ नही करेगा। पर ऐसे अच्छा तो नही लगता। दफ्तर की रुसवाँ-भर चीज मेरे पास से इधर-उधर नही होती। डाकखाने वाले अभी तक याद करते हैं। तेईस दिन उनके यहाँ नौकरी की, एक पाई का फरक नहीं पड़ा। सब अभी तक मानते है, पोस्टमास्टर साहब अभी तक याद करते हैं। अपना काम चौकस चाहिए। चौकसी के लिए अकल, आँख और वक्त की

जरूरत है। आज चलते वक्त साहब कहने लगे, तुम्हारा बड़ा सहारा है, राधेलाल बाबू ! तुम्हारी हिम्मत थी कि इतना बड़ा काम निबट गया। इसीलिए तुम्हें तकलीफ दी।……यह छोटी बात है भला। जो काम कहो, साहब से हाथ पकड के करा लूँ।

इतना सुनकर पत्नी तृप्त थी, उसकी आँखो मे पुरुषार्थी पति के लिए प्रशसा थी और राधेलाल निश्चिन्त हो गये थे।

दूसरे रोज गाँधी डायरी के मुताबिक बाबू राधेलाल चार बजे से कुछ पहले ही पीछे कैरियर मे दफ्तर की दो पतली फाइलें इस तरह डोरी से बाँधे हुये पहुँच गये, जैसे कोई जिन्दा मुर्गा इस तरह बाँध कर लाये हो कि कही पीछे से उड़ न जाय। बात असल मे यह है कि वह सुरक्षा के बेहद कायल हैं। पीछे कैरियर पर कोई भी चीज खूब अच्छी तरह कसकर बाँध लेने के बाद वे निश्चिन्त हो जाते हैं कि अब गिरेगी नही। कैरियर टूट कर गिर जाय, यह बात दूसरी है।

पहुँचते ही लाला रामभरोसे से मिले, तो सबमे पहले उन्होंने कैरियर से फाइलें खोल कर उन्हे बक्स मे रख आने की ताकीद की, कपड़े मे लपेट कर कि कोई पुरजा इधर से उधर न हो जाय और तब काम के लिए पूछा। भोज की तैयारी हो रही थी।

राधेलाल को पूड़ियाँ निकलवाने का काम सौंपा गया। भट्ठी सुलग रही थी और कड़ाह चढा था। हलवाई घी के इन्तजार मे बैठा था। राधेलाल एक स्टूल पर जाकर जम गये। घी के कनस्टर आये तो देखते ही राधेलाल की भौहे सिकुड़ी—घासलेट !

और उन्हे लगा कि कुछ अनर्थ हो रहा है। लाला रामभरोसे पर क्रोध आया कि बिरादरी मे यह नया चलन कैसे चलेगा। आज तक भोज मे असली घी के सिवाय किसी गरीब-से-गरीब बिरादरी वाले ने यह घासलेट नही इस्तेमाल किया। लोग सालो पहले से घी जोड़ते हैं, पर होता सब असली घी मे है। अगर कहीं पगत में पता चल गया कि राधेलाल ने बैठकर अपने सामने यह सब होने दिया तो, तो ?……

गाँव से भी रिश्तेदारी के दस-बीस जने आयेंगे, तब कैसी थुक्का-फजीहत होगी गाँव मे, और सब उन्ही पर आ जायगा कि राधेलाल कैसे बैठे यह सब करवाते रहे ?

बात असल मे यह थी कि कस्बे के सारे ही महाजन-परिवार गाँव से उखड़े हुए थे। कोई तीन पीढी से यहाँ था, कोई दो पीढी से और कोई अभी-अभी आया था। कस्बे आने वाले घरानो मे सबसे पहला घर राधेलाल के बाबा का था, जो लाला ही पुकारे जाते थे। इन लाला राम भरोसे की पिछली पीढी ही कस्बे मे आई थी। राधेलाल और रामभरोसे मे भीतर-ही-भीतर असली कस्बाती होने की थोडी-बहुत प्रतियोगिता भी चलती रहती थी, वैसे सारे महाजन परिवारो मे कस्बाती होने की होड साधारण बात थी, इसलिए ढोलक मजीरा के साथ-साथ लाला रामभरोसे ने दो घन्टे के लिए बैटरी का लाउड स्पीकर भी लगवाया था। गाँव के सस्कारो से बँधे, कस्बाती जिन्दगी की होड़ मे ये सारे ही परिवार भीतर से टूट चुके थे। लेकिन तीज-त्योहार, भोज- सराध और गमी-खुशी के सारे आयोजन अभी भी उसी गंवाई दरियादिली, इफरात और खुलेपन से होते थे। कस्बाती चुस्ती और काइयाँपन धीरे-धीरे घर कर रहा था, पर बिरादरी के मामले मे वही गवाई ठाट जरुरी समझा जाता। नाक ऊँची रखी जाती थी।

बाबू राधेलाल ने लाला रामभरोसे को बुलाकर पूड़ियो पर बैठने से इनकार कर दिया। लाला रामभरोसे ने बहुत समझाया—अब गाँव की बात और मरजाद जाने दो, राधे। वहाँ हर घर दूसरे घर के कारज मे मिरधा मे घी अन्न पुजाता था, तो सब निभ जाता था। अब यहाँ किसने मेरे घर के लिए सिर रोपा है, सब तो अकेले ओढ़ा बटोरा है।

पर राधेलाल की समझ मे न आया। बोले—तो किसी और को बैठा दो पूड़ियो पर। मैं जिवाने का काम कर दूँगा। रही कहने की बात, सो मेरे मुँह से किसी बिरादरी वाले के सामने यह बात नही पहुँचेगी कि भोज पामलेट मे हुआ है बस ?

बात मे अडगा पड़ जाने के कारण लाला रामभरोसे ने मुख्तार साहब के मेहनताने वाले जमा हिसाव से रुपये निकाले और फौरन देसी घी दुकानों से मगाया गया और भोज हुआ। भोज तो हुआ, पर बाबू राधेलाल के मन मे चोर घुस गया कि लाला बुरा मान गये हैं और किसी आडे वक्त इज्जत उतारने से बाज न आयेंगे। पर जो हो गया, सो हो गया, अब उससे निस्तार ही कहाँ था।

थोडे दिन गुजरे। बाबू राधेलाल की एवजी वाली नौकरी छूट गई थी और तब से कही काम का जुगाड नही बैठ रहा था। सुबह मे मुलाकातें करने निकल जाते, पर इधर तीन महीने से बेकारी ऐसी जड़ गयी थी कि कुछ समझ मे नही आता था। एक रोज घूमते-घूमते तहसील जा पहुँचे। लेखपालों से मिले और कुछ थोडा रजिस्टर भरने का काम ठेके पर ले आये। आबादी के नक्शे तैयार हो रहे थे। लेखपालों को मर्दुमशुमारी के पाँच-पाँच नक्शे तैयार करके देने थे। काम बहुत था। कुछ सिलसिला निकला।

उस दिन रजिस्टर दबाकर तहसील से बाहर आये, तो स्टाम्प बेचने वाले मुन्शी जी से दुआ-सलाम हुआ और पता चला कि लाला रामभरोसे को फालिज मार गया है उनका तख्त सूना पड़ा है।

पता नही क्यो, राधेलाल को इस खबर से कोई दु.ख नही हुआ, पर दिखाने को बोल ही पड़े - मुझे टोकते थे कि काहे जान दिये देते हो, और खुद पड़ रहे।

—अरे तीन दिन पहले तक काम पर आये थे। अकस्मात् सब हुआ। उसी दिन या एक दिन पहले तुम्हारी बात आ गयी, तो लाला कह रहे थे कि राधेलाल मे बड़ा दम है। उन्ही से पता चला था कि आजकल बेकार हो तुम। लाला रामभरोसे की जगह तब तक एवजी कर लो। ठीक हो जायें, तब अपने छोड़ देना। मुख्तार साहब का भी काम न हर्ज हो।

बात राधेलाल को जँची, पर वह जानते थे कि लाला रामभरोसे

को सपने में भी पता चल गया कि वह उनकी एवजी के लिए तैयार है, तो किसी दूसरे आदमी को सिफारिश से वहाँ पहुँचा देंगे। वह भला राधेलाल के लिए कुछ होने देंगे ?

तीन चार रोज हुये पर बार-बार वही बात मन में घुमडती कि यह मुहर्रिरी मिल सकती, तो थोड़ा सकट कटता, पर लाला रामभरोसे का ध्यान आते ही सारे ख्याल दम तोड़ देते। शायद उन्होंने किसी दूसरे की सिफारिश कर भी दी हो।

उस वक्त शाम होने को थी। बाबू राधेलाल आँगन में पड़ी चारपाई पर बैठे ध्यान से अपनी गाँधी डायरी देख रहे थे कि दरवाजे से आवाज आयी—गमी को बुलउआ है, लाला रामभरोसे सुर्ग सिधारे हैं।—नाई बिरादरी में खबर कर रहा था। राधेलाल दौड़कर बाहर आये, जरूरी पूछतांछ की, तो पता चला कि अर्थी घण्टे भर में उठ जायगी।

भीतर आये। पाँच-सात मिनट सोचते रहे। पत्नी से धोती ली और चल पड़े। पर कुछ सोचते हुये देहरी से वापस लौट आये। धोती सिर के नीचे धरे चित लेटे रहे, फिर उठे और पत्नी से बोले कि अभी धोती रहने दो। एक जगह जरा जरूरी काम से हो आयें, तब गमी में जायेंगे। पर फिर सोच साचकर उन्होंने धोती बगल में दबायी और चल दिये। चलते-चलते सोचने मे मशगूल थे। आखिर उन्होंने धोती एक जान-पहचान की दुकान पर रख दी और दस मिनट बाद वह मुख्तार साहब के मकान के हाते में उनकी आराम कुर्सी के सामने विनत खड़े थे और मुख्तार साहब कह रहे थे आप ही राधेलाल हैं ? अच्छा-अच्छा, रामभरोसे ने भी आपको एवजी पर रख लेने को कहलवाया था। बेचारे वे बड़े नेक थे। थे तो हमारे मुन्शी पर घर के बड़े बूढ़ों की तरह रहते थे। परसों देखने गया था। तब भी उन्हें काम की फिक्र थी। आपकी तो कुछ रिश्तेदारी भी थी उनसे, । उस रोज भी आपका नाम लिया था तो ठीक है, मातबर आदमी हैं कलसे आ जाइए।

और बावू राधेलाल पसीने में नहाये खड़े थे हतवुद्ध । आंखे एकदम खुश्क थी, जैसे पथरा गयी हो ।

भारी कदमो से वह मुख्तार साहव का अहाता पार करके श्मशान की तरफ जा रहे थे और इक्कीस बरस की नौकरी पेशा जिन्दगी में उन्हे आज पहली बार अपने छूटे हुये गांव की याद आई थी, एक कसक भरी याद ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. "माली तो चार पाँच नीबू दे रहा था, हमने कहा, दो ही काफी हैं ।' राधेलाल का अपनी पत्नी को यह कहना उनकी कौनसी विशेपता प्रकट करता है ?
   (क) चापलूसी की आदत ।
   (ख) अपनी वड़ाई करना ।
   (ग) पत्नी को धोका देना ।
   (घ) झूँठी वातें वनाना ।
   (च) दीनता को छिपाना । ( )
२. राधेलाल को लोग बावू राधेलाल क्यो कहने लगे ?
   (क) वे परिवार मे सवसे छोटी उम्र के थे ।
   (ख) उनके परिवार के सभी पुरुपों के नाम के साथ वावू जुड़ता था ।
   (ग) वे मैट्रिक पास थे और अंग्रेजी अच्छी जानते थे ।
   (घ) उन्हें लाला कहलाने से चिढ़ थी ।
   (च) वे बन ठन कर रहते थे । ( )
३. फालिज से पीड़ित रामभरोसे ने राधेलाल को एवजी पर रख लेने की सिफारिश मुख्तार साहव से की थी। इससे रामभरोसे का कौनसा चारित्रिक गुण प्रकट होता है ?
४. 'कस्वे की जिन्दगी गांव की आवादी को चुम्बक की तरह खीचती है ।' इसका क्या कारण है ?

५. 'बहुत ऊँचा स्वाभिमान जैसा अंधा होता है, वैसे ही पति की प्रशंसा से किसी भी पत्नी का स्वाभिमान ऊँचा उठकर उसे अंधा कर देता है।'

राधेलाल की किस प्रशसा ने उसकी पत्नी को अंधा कर दिया ?

६. लाला रामभरोसे दुकानदारी छोड़कर मुन्शी क्यों बने ?

७. राधेलाल मे ऐसी कौनसी विशेषताएँ थी जिससे हर दफ्तर को वह प्यारे थे और उन्हे हर दफ्तर प्यारा था ?

८. 'भोज तो हुआ, पर बाबू राधेलाल के मन मे चोर घुस गया।' यह चोर क्या था जिसके कारण वे डर गये ?

(क) सहानुभूति
(ख) सरलता
(ग) बड़प्पन
(घ) दीनता
(च) परदुःख कातरता। ( )

९. 'बाबू राधेलाल कायदा पसन्द आदमी थे।' वे ऐसे क्या काम करते थे जिनसे उनकी कायदा पसन्दी सिद्ध होती है ?

१०. 'गाँव के संस्कारो से बँधे, कस्बाती जिन्दगी की होड़ मे ये सारे ही परिवार भीतर से टूट चुके थे।' प्रस्तुत कहानी के कथानक के आधार पर उदाहरण देकर इस कथन को सिद्ध कीजिए।

११. बाबू राधेलाल ने रामभरोसे के घर पूड़ियाँ निकलवाने के काम को अस्वीकार क्यो कर दिया ?

१२. 'और बाबू राधेलाल पसीने मे नहाये खड़े थे हतबुद्ध' बाबू राधेलाल की इस दशा का क्या कारण था ?

काबुलीवाला

बंगला से अनूदित

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर)

जीवन-रेखा :

विश्व कवि टैगोर का जन्म कलकत्ते में सन् १८६१ ई० में हुआ था। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ब्रह्म समाज के उपासक थे। उनके परिवार के सभी सदस्य बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। बचपन में रवीन्द्र बाबू ने अपने पिता के साथ बहुत भ्रमण किया। सन् १८७७ में वे इंगलेण्ड गये। वहाँ वे कुछ समय तक अध्ययन करते रहे और वापस लौट आये। काव्य रचना की ओर उनकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। घर में जमीदारी थी और उसको सम्भालने का उत्तरदायित्व उनका ही था। उससे समय निकालकर उन्होने सैकड़ों निबन्ध, कविताएँ, लघुकथाएं तथा नाटक आदि लिखे। उनका साहित्य संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्य में गिना जाता है।

उन्होंने 'शान्ति निकेतन' जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण एवं सांस्कृतिक ज्ञान केन्द्र की स्थापना की जिसमे आज भी संसार के सभी लोग आकर शिक्षण प्राप्त करते हैं। वह 'विश्व भारती' के नाम से प्रसिद्ध है। रवीन्द्र बाबू एक मेधावी विद्वान थे। वे हमारी सस्कृति के उन्नायकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। सन् १९४१ में उनका स्वर्गवास हो गया। सच-मुच रवीन्द्रनाथ टैगोर भारत की ही नही विश्व की महान् विभूति थे।

साहित्य सर्जना :

वे मूल रूप से बंगला भाषा मे लिखते थे। उनके साहित्य का अनुवाद अन्य भाषाओं में भी हुआ है। उनकी कतिपय प्रमुख रचनाएं

ये हैं :

उपन्यास :—गोरा

कविता :—उर्वशी, गीतांजली, मानसी, सांध्यसंगीत, प्रभात गीत, नैवेद्य, स्मरण, खेवैया, चित्रा, नौका डूबी।

कहानियाँ :—काबुलीवाला आदि।

नाटक :—पृथ्वीराज-पराजय, सन्यासी, प्रकृति परिशोध, डाकघर, बलिदान, चित्रांगदा आदि।

कहानी कला :

टैगोर की प्रवृत्ति अपनी कहानियों में यथार्थ चित्रण की ओर रही है। वातावरण का सजीव चित्रण उनकी विशेषता है। मानव-मनोवृत्तियों का उनके द्वारा किया गया सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टव्य है। उन्होंने पात्रों को कुंठाओं, विकृतियों, सुख दुखात्मक अनुभूतियों को भलीभाँति उभारा है। कहानियों में सभी प्रकार की रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना मिलती है। भाषा के सरल प्रवाह पर भी विशेष ध्यान रहा है।

काबुलीवाला :

गुरुदेव टैगोर द्वारा बँगला भाषा में रचित कहानियों मे 'काबुली वाला' सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

कहानी में एक पठान हृदय के वात्सल्य, प्रेम और त्याग का चित्र प्रस्तुत किया गया है। पठान रहमान सीमान्त प्रदेश का रहने वाला था। उसका टैगोर की पुत्री मिनी से एक बार परिचय हो गया। पठान के भी इसी अवस्था की एक पुत्री थी। उसी का स्वरूप उसको मिनी में भी दृष्टिगत हुआ। एक बार पठान को किसी अपराध मे जेल की सजा हुई और वह कई वर्षों नहीं आया। जेल से मुक्त होकर जब वह आया तो उसे मिनी बहुत बड़ी दिखाई पड़ी। मिनी की शादी की व्यवस्था हो रही थी। पठान सोचने लगा उसकी लड़की भी अब सयानी हो गई होगी, पर उस तक वह पहुँचे कैसे? टैगोर ने उसकी सहायता की और बिछुड़े पिता को अपनी बेटी से पुनः मिलने का स्वर्णावसर प्रदान किया।

मेरी पाँच बरस की छोटी लड़की मिनी से क्षण-भर भी बात किये बिना नहीं रहा जाता। धरती पर जन्म लेने के बाद भाषा सीखने में उसने केवल एक ही साल लगाया था और उसके बाद से जब तक वह जागती रहती है तब तक के समय का एक भी क्षण वह मौन रहकर नष्ट नही करती। उसकी माँ कभी-कभी धमकाकर उसका मुंह बन्द कर देती है पर मैं ऐसा नही कर पाता। मिनी अगर खामोश रहे तो वह ऐसी अस्वाभाविक सी लगती है कि मुझसे यह ज्यादा देर तक सहा नहीं जाता। और सही कारण यह है कि उसके साथ मेरा वार्तालाप कुछ ज्यादा उत्साह के साथ चलता है।

सवेरे मैं अपने उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद को लिखने जा ही रहा था कि मिनी ने आकर शुरू कर दिया, बाबूजी रामदयाल दरबान काक को कौवा कह रहा था। वह कुछ नही जानता। है न बाबू?'

संसार की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मैं उसे कुछ ज्ञानदान करने को ही था कि उसने दूसरा प्रसग छेड़ दिया। 'सुनो बाबू, भोला कह रहा था कि आसमान से हाथी सूँड से पानी गिराता है और तभी बारिश होती है। हाय अम्मा, भोला झूँठ मूँठ को इतना बकता है। बस बकता ही रहता है, दिन-रात बकता रहता है, बाबू।'

इस बारे में मेरी राय के लिये तनिक भी इन्तजार न कर वह अचानक पूछ बैठी, 'क्यों बाबू अम्मा तुम्हारी कौन लगती है?'

मैंने मन-ही-मन कहा, 'साली', और मुँह से कहा, 'मिनो, तू जा, जाकर भोला के साथ खेल। मुझे अभी काम करना है।'

तब वह मेरी लिखने की मेज के पास मेरे पैरों के निकट बैठ गई और दो घुटने और हाथ हिला-हिलाकर, फुर्ती से मुँह चलाते हुये रटने लगी, *'आगडुम-बागडुम घोड़ा डुम साजे।'* उस समय मेरे उपन्यास के सत्रहवें

परिच्छेद में प्रताप सिंह काँचनमाला को लेकर अँधेरी रात में कारागार की ऊँची खिड़की से नीचे नदी के पानी मे कूद रहे थे।

मेरा कमरा सडक के किनारे था। यकायक मिनी 'अक्को-बक्को, तीन तिलक्को' खेल छोड़कर खिडकी के पास दौडी-दौड़ी गई और जोर से चिल्लाकर बुलाने लगी, 'काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला!'

गन्दे-से ढीले कपडे पहने, सिर पर पगड़ी बाँधे, कन्धे पर झोली लादे और हाथ में अँगूर की दो-चार पिटारियाँ लिये एक लम्बा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी बिटिया-रानी के मन मे कैसे भावों का उदय हुआ यह बताना मुश्किल है, पर वह जोर-जोर से उसे पुकारने लगी। मैंने सोचा, अभी कन्धे पर झोली लादे एक आफत मेरे सिर पर आ सवार होगी और मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद समाप्त होने से रह जायगा।

लेकिन मिनी की चिल्लाहट से ज्योही काबुली ने हँसकर मुँह घुमाया और मेरे घर की ओर आने लगा, त्योंही मिनी जान लेकर अन्दर की ओर भाग गई—और फिर वह लापता ही हो गई। उसके मन में एक अन्ध विश्वास-सा जम गया था कि उस झोली के अन्दर ढूँढने पर मिनी जैसी दो-चार जीवित मानव-सन्तानें मिल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर हँसते हुये मुझे सलाम किया और खडा हो गया। मैंने सोचा कि हालांकि प्रताप सिंह और काँचनमाला दोनों की दशा बहुत ही सकटापन्न है, फिर भी इस आदमी को घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना ठीक नहीं होगा।

कुछ चीजें खरीदीं। उसके बाद इधर-उधर की चर्चा भी आ गई। अब्दुलरहमान से रूस, अँग्रेज, सीमान्त-रक्षा-नीति आदि विषयों पर बातें होने लगी।

अन्त में उठते समय उसने पूछा, 'बाबू जी, तुम्हारी लड़की कहाँ गई?'

मिनी के मन से निराधार भय दूर करने के इरादे से उसे अन्तःपुर

से बुलवा लिया। वह मेरे बदन से सटकर खड़ी हो गई और सन्देह भरी आँखों से काबुली का चेहरा और उसकी झोली की ओर देखती रही।

काबुली ने झोली में से किशमिश और खुबानी निकाल कर देना चाहा, पर उसने किसी तरह से भी नहीं लिया—दुगने सन्देह के साथ वह मेरे घुटनों से चिपकी रही। पहला परिचय इस तरह से हुआ।

कुछ दिनों के बाद, एक दिन सवेरे किसी जरूरत से मैंने घर के बाहर निकलते समय देखा कि मेरी दुहिता दरवाजे के पास वाली बेंच पर बैठी बेरोक-टोक बातें करती जा रही है और काबुली उसके पैरों के पास बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ सुन रहा है और बीच-बीच में प्रसंग के अनुसार अपनी राय भी खिचड़ी भाषा में जाहिर कर रहा है। मिनी के पाँच साल के जीवन के अनुभव में 'बाबू' के अलावा ऐसा धैर्यशील श्रोता शायद ही कभी मिला हो। फिर देखा कि उसका छोटा-सा आँचल बादाम, किशमिश से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, 'इसे यह सब क्यों दिया। ऐसा मत करना।' इतना कहकर मैंने जेब से एक अठन्नी निकालकर उसे दे दी। उसने बेझिझक अठन्नी लेकर अपनी झोली में डाल ली।

घर लौटकर देखा कि उस अठन्नी को लेकर बड़ा हो-हल्ला शुरू हो गया है।

मिनी की माँ एक सफेद चमचमाता गोलाकार पदार्थ हाथ में लिये डाँटकर मिनी से कुछ पूछ रही थी, 'तुझे यह अठन्नी कहाँ से मिली?'

मिनी ने कहा, 'काबुलीवाला ने दी है।'

उसकी माँ बोली, 'काबुलीवाला से तूने अठन्नी ली क्यों?'

मिनी रूआँसी-सी होकर बोली, 'मैंने माँगी नहीं, उसने खुद ही दे दी।'

मैंने आकर मिनी को उस आसन्न विपत्ति से बचाया और उसे बाहर ले आया।

खबर मिली कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी मुलाकात हो

ऐसी बात नहीं। इस बीच वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की घूस देकर उसने मिनी के नन्हे लोभी हृदय पर काफी अधिकार जमा लिया है।

देखा कि इन दोनों मित्रो में कुछ बँधी हुई बातें और हँसी होती रही है। जैसे रहमान को देखते ही मेरी लड़की हँसती हुई उससे पूछती 'काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला तुम्हारी झोली के भीतर क्या है ?'

रहमान एक अनावश्यक चन्द्रबिन्दु जोड़कर जबाब देता, "हाँथी !" 'यानि उसकी झोली के भीतर एक हाथी है, यही उनके परिहास का सूक्ष्म भावार्थ था। उसके परिहास का अर्थ बहुत ही सूक्ष्म है ऐसा तो नही कहा जा सकता, फिर भी इस परिहास से दोनों को ही बड़ा मजा आता। और शरद् ऋतु के प्रभात मे एक सयाने और कम उम्र के शिशु की सरल हँसी मुझे भी बड़ी अच्छी लगती।

उन दोनों में और एक बात चल रही थी। रहमान मिनी से कहता 'खोंखी, तुम कभी ससुराल मत जाना, हाँ !'

बगाली घर की लड़कियाँ जन्म से ही ससुराल शब्द से परिचित हो जाती हैं, लेकिन हम लोगों ने, जरा आधुनिक युग के होने के कारण नन्ही-सी बच्ची को अभी ससुराल के बारे में सचेत नही किया था। इसलिये रहमान का अनुरोध वह साफ-साफ नही समझ पाती थी, लेकिन बात का कोई जवाब न देकर चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था। वह पलटकर रहमान से पूछ बैठती, 'तुम ससुराल जाओगे ?'

रहमान काल्पनिक श्वसुर के प्रति अपना बहुत बड़ा घूँसा तानकर कहता, 'हम ससुर को मारेगा !'

यह सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अपरिचित जीव की दुखी अवस्था की कल्पना कर खूब हँसती।

अब शुभ्र शरद्काल था। प्राचीन काल मे इसी समय राजा लोग दिग्विजय करने निकलते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कही नही गया, लेकिन शायद इसीलिये मेरा मन संसार भर मे घूमा करता है। मैं मानों

अपने घर के कोने मे चिरप्रवासी हूँ। बाहर की दुनियाँ के लिये मेरा मन हमेशा बेचैन रहता है। किसी विदेश का नाम सुनते ही मेरा चित्त वहीं दौड जाता और किसी विदेशी आदमी के देखते ही फौरन मेरा मन नदी-पर्वत-अरण्य के बीच एक कुटिया का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासमय स्वतन्त्र जीवन का चित्र कल्पना मे जागरित हो उठता है।

इधर मैं भी इतना निश्चल स्वभाव यानी कुन्द प्रकृति का हूँ कि अपना कोना छोड़कर जरा बाहर निकलने मे ही सिर पर गाज के गिरने-सा अनुभव होने लगता है। इसलिये सबेरे अपने छोटे कमरे में मेज के सामने बैठकर इस काबुली से गप्पे लड़ाने मे बहुत कुछ भ्रमण का उद्देश्य पूरा कर लिया करता हूँ। दोनो ओर ऊबड़-खाबड़, दुर्गम, जले हुये, लाल-लाल ऊँचे पहाडों की माला, बीच में संकरे रेगिस्तानी रास्ते और उन पर सामान से लदे ऊँटो का काफिला चल रहा है। पगडी बाँधे सौदागर और मुसाफिर कोई ऊँट पर, तो कोई पैदल जा रहे हैं, किसी के हाथ मे बरछी है, तो किसी के हाथ मे पुराने जमाने की चकमक पत्थर से दगनेवाली वन्दूक है। काबुली अपने मेघगर्जन के स्वर मे, खिचड़ी भाषा मे अपने वतन के बारे मे सुनाता रहता और यह चित्र मेरी आँखों के सामने काफिलो के समान निकलता जाता।

मिनी की माँ बडे ही शकित स्वभाव की है। रास्ते पर कोई आवाज होते ही उसे लगता कि दुनियाँ-भर के सारे शराबी मतवाले होकर हमारे मकान की ओर ही भागते चले आ रहे है। यह दुनियाँ हर कही चोर, डाकू, शराबी, साप, बाघ, मलेरिया, सूँओ, तिलचट्टो और गोरों से भरी है यही उनका ख्याल है। इतने दिनों मे (हालाकि बहुत ज्यादा दिन नही) दुनियाँ मे रहने के बाद भी उनके मन से यह विभीषिका दूर नही हुई।

खास तौर से रहमान काबुली के बारे मे वह सम्पूर्ण रूप से निश्चिन्त नही थी। उस पर विशेष दृष्टि रखने के लिये वह मुझ से बार-बार अनुरोध करती थी। मैं उसके सन्देह को हँसकर उड़ा देने की कोशिश

करता तो वह मुझ से एक-एक कर कई सवाल पूछ बैठती—'क्या कभी किसी का लड़का चुराया नही गया ?' 'क्या काबुल मे गुलामी-प्रथा चालू नही है ?' 'एक लम्बे-चौड़े काबुली के लिये क्या एक छोटे बच्चे को चुरा ले जाना बिल्कुल असम्भव बात है ?'

मुझे मानना पड़ता कि यह बात बिल्कुल असम्भव तो नही पर, विश्वास योग्य नही है। विश्वास करने की शक्ति हर एक मे समान नहीं होती, इसलिये मेरी स्त्री के मन मे डर बना ही रह गया। लेकिन सिर्फ इसलिये बिना किसी दोष के रहमान को अपने घर में आने से मैं मना नही कर सका।

हर साल माघ महीने मे रहमान अपने मुल्क चला जाता है। इस समय वह अपने रुपयों की वसूली मे बहुत फँसा रहता है। घर-घर दौड़ना पड़ता है फिर भी वह एक बार मिनी से आकर मिल ही जाता है। देखने से ऐसा लगता है मानों दोनों मे कोई साजिश चल रही हो। जिस दिन सवेरे नही आ पाता, उस दिन देखता हूँ कि वह शाम को आया है। अँधेरे कमरे के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पायजामा पहने झोला-झोली वाले लम्बे-तड़ंगे आदमी को देखकर सचमुच मन में अचानक एक आशका-सी होने लगती है। लेकिन जब मे देखता हूँ कि मिनी 'काबुलीवाला, काबुलीवाला' कहकर हँसते-हँसते दौड़ आती और अलग-अलग उम्र के दो मित्रों मे पुराना सरल परिहास चलने लगता है तो मेरा सारा हृदय खुशी से भर जाता है।

एक दिन सवेरे अपने छोटे कमरे मे बैठा अपनी किताब का प्रूफ देख रहा था। सर्दी, खत्म-होने से पहले, आज दो-तीन दिन से कड़ाके की सर्दी पड रही थी। चारो ओर सबके दांत किटकिटा रहे थे। खिड़कियों के रास्ते से धूप आकर मेज के नीचे मेरे पैरों पर पड़ रही थी—उसकी गर्मी मुझे बडी- सुहावनी लग रही थी। सुबह के करीब आठ बजे होगे। गुलूबन्द लपेट ऊषाचर लोग अपना प्रात.कालीन भ्रमण

समाप्त कर घर लौट रहे थे। ऐसे ही समय सड़क पर बड़ा शोर-गुल सुनाई पड़ा।

देखा, हम लोगों के उस रहमान को दो सिपाही बांधे लिये जा रहे हैं और उसके पीछे-पीछे तमाशबीन लड़कों का झुण्ड चला आ रहा है। रहमान के कपड़ो पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से सना हुआ छुरा है। मैंने दरवाजे से बाहर जाकर सिपाहियों से पूछा कि मामला क्या है।

कुछ तो उस सिपाही से और कुछ रहमान से सुना कि हमारे पड़ोस में एक आदमी ने रहमान से उधार मे एक रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपये अब भी उस पर बाकी थे, जिसे देने से वह मुकर गया और इसी पर बहस होते-होते रहमान ने उसे छुरा भोंक दिया।

रहमान उस झूठे आदमी के प्रति तरह-तरह की अश्रव्य गालियां सुना रहा था कि इतने मे 'काबुलीवाला, ओ! काबुलीवाला' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

क्षण-भर में रहमान का चेहरा निर्मल हास्य से खिल उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी, इसलिये झोली के बारे में दोनों मित्रों की पुरानी चर्चा न छिड़ सकी। मिनी आते ही यकायक उससे पूछ बैठी, 'तुम ससुराल जाओगे ?'

रहमान ने हँसकर कहा, 'वही तो जा रहा हूँ।'

उसने देखा कि यह जवाब मिनी के लिये हास्य-जनक न हुआ, तब उसने हाथ दिखाते हुये कहा, 'ससुर को मारता, पर करूँ क्या, हाथ बंधे हैं।'

संगीन चोट पहुँचाने के जुर्म में रहमान को कई साल की कैद की सजा हो गई।

उसके बारे में मैं धीरे-धीरे भूल ही गया। हम लोग अब अपने-अपने घरों में बैठे प्रतिदिन के कार्यों में लगे हुये आराम से दिन गुजार रहे थे तब एक स्वाधीन पर्वतचारी पुरुष जेल की दीवारों के अन्दर कैसे साल

पर साल गुजार रहा है यह बात कभी हमारे मन में नही आई।

और चचल हृदया मिनी का बर्ताव और भी शर्मनाक था, यह बात उसके बाप को भी माननी पड़ेगी। उसने बड़े ही बेलोस ढंग से अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नवी सईस के साथ दोस्ती कर ली, फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ने लगी वैसे-वैसे सखाओं के बदले एक के बाद एक-एक कर सखियाँ जुटने लगी। यहाँ तक कि अब वह अपने बाबू के लिखने के कमरे मे भी नही दिखाई देती। मैंने एक तरह से उसके साथ कुट्टी कर रखी है।

× × × ×

कितने ही वर्ष बीत गये। फिर शरद-ऋतु आई है। मेरी मिनी की शादी तय हो गई है। दुर्गा पूजा की छुट्टी में उसका ब्याह हो जायगा। कैलाशवासिनी पार्वती के साथ-साथ मेरे घर की आनन्दमयी भी पिता का घर अँधेरा कर पति के घर जायगी।

बड़े ही सुहावने ढंग से आज प्रभात में सूर्योदय हुआ है। बरसात के बाद शरद् की नई, धुली हुई धूप ने मानो सुहागे में गलाये हुये निर्मल खरे सोने का रंग अपना लिया है। कलकत्ता की गलियो में आपस मे सटी टूटी ईंटों वाली गंदी-सी इमारतों पर भी इस धूप की आभा ने एक अनोखी रमणीयता ला दी है।

हमारे घर पर प्रभात होने के पहले से ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा लग रहा है मानो वह शहनाई मेरे सीने में से पसलियों में होती हुई बज रही है। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी आसन्न विच्छेद-वेदना को शरद् की धूप के साथ विश्व-भर में व्याप्त किये दे रही हो। मेरी मिनी का आज ब्याह है।

सवेरे से ही बड़ा गुल-गपाड़ा और लोगो का आना-जाना शुरू हो गया। आगन में बाँस बाँधकर शामियाना लगाया जा रहा है, मकान के कमरो में और बरामदे पर झाड़ लटकाए जाने की टन-टन सुनाई पड़ रही है। गुहार-पुकार का तो कोई अन्त ही नहीं।

मैं अपने पढ़ने-लिखने वाले कमरे मे वठा सर्च का हिसाव लिख रहा था कि रहमान आकर सलाम करते हुये खडा हो गया ।

शुरू मे मैं उसे पहचान न सका । उसके पास वह झोली नही थी। उसके वे लम्बे पट्टेदार वाल नही थे और न चेहरे पर चमक थी । अन्त मे उसकी मुस्कराहट देखकर उसे पहचान गया ।

पूछा, "क्यों रहमान, कब आये ?"

उसने कहा, "कल शाम को जेल से छूटा हूँ ।"

सुनते ही, यह वात मानो मेरे कानों में खट से लगी । किसी कातिल को मैंने कभी अपनी आँखों से नही देखा । इसे देखकर मेरा सारा अन्तःकरण मानों सकुचित-सा हो गया । मेरी यह इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिवस पर यह आदमी यहाँ से चला जाय तो वहुत अच्छा हो ।

मैंने उससे कहा, "आज हमारे घर मे एक जरूरी काम है । मैं उसी मे लगा हुआ हूँ आज तुम जाओ ।"

सुनते ही वह जाने को तैयार हुआ । लेकिन आखिर तक दरवाजे के पास जाकर कुछ आनाकानी करते हुये वोला, "एक वार खोखी को नही देख सकता क्या ?"

शायद उसके मन में यही धारणा थी कि मिनी अभी तक वैसी ही बनी हुई है । शायद उसने सोचा था कि मिनी फिर वैसे ही पहले की तरह 'कावुलीवाला—कावुलीवाला' पुकारती और भागती हुई आयेगी और उसके विलक्षण हास्यालाप मे किसी तरह का फर्क नही आयेगा । यहाँ तक कि पहले की मित्रता की याद कर वह एक पिटारी अगूर और कागज के दोने मे थोड़ा किशमिश-वादाम शायद किसी अपने वतनी दोस्त से माँग-जाँच कर ले आया था—उसकी पहले वाली झोली उसके पास नही थी ।

मैंने कहा, 'आज घर पर काम है । आज किसी से मुलाकात न हो सकेगी ।'

वह मानो कुछ उदास-सा हो गया। स्तब्ध खड़ा मेरी ओर एक-टक देखता रहा, फिर 'सलाम बाबू' कहकर वह दरवाजे से बाहर निकल गया।

मेरे हृदय मे एक टीस-सी उठी। सोच रहा था कि उसे बुला लूँ कि देखा वह खुद ही लौटा आ रहा है।

नजदीक आकर उसने कहा, "यह अगूर और किशमिश और बादाम खोंखी के लिये ले आया हूँ, उसको दे दीजिएगा।"

वह सब लेकर मैने दाम देना चाहा तो उसने यकायक मेरा हाथ पकड़ लिया, कहा, "आपकी बड़ी मेहरबानी है बाबू ! हमेशा याद रहेगी —मुझे पैसा न दे।"

"बाबू जैसी तुम्हारी लड़की है वैसी मेरी भी एक लड़की वतन में है। मैं उसकी याद कर तुम्हारी खोंखी के लिये थोड़ी-सी मेवा हाथ मे लिए चला आता था। मैं यहाँ सौदा बेचने नही आता।"

इतना कहकर उसने अपने ढीले-ढाले कुर्त्ते के अन्दर हाथ डालकर एक मैला-सा कागज का पुर्जा निकाला और बडे जतन से उसकी तह खोलकर दोनो हाथों से उसे फैलाकर मेज पर रख दिया।

देखा, कागज पर एक नन्हे-से हाथ के पजे की छाप है। फोटो नही, तैलचित्र नही, सिर्फ हथेली मे थोड़ी-सी कालिख लगाकर उसी का निशान ले लिया गया है। कन्या की इतनी-सी याददाश्त छाती से लगाये रह्मान हर साल कलकत्ता की गलियो में मेवा बेचने आता था—मानो उस सुकोमल क्षुद्र हाथ का स्पर्श उसके विशाल विरही वक्ष मे अमृत घोले रहता था।

देखकर मेरी आँखे सजल हो आई। फिर मैं यह भूल गया कि वह एक काबुली मेवावाला है और मैं एक उच्च वश का बगाली हूँ। तब मैं यह अनुभव करने लगा कि जो वह है वही मैं हूँ, वह भी बाप है और मैं भी बाप हूँ। उसकी पर्वतवासिनी नन्ही पार्वती के हाथ की निशानी ने ही मेरी मिनी की याद दिला दी। मैंने उसी वक्त मिनी को बाहर

बुलवाया । अन्त.पुर मे इस पर बड़ी आपत्ति की गई, पर मैंने एक न सुनी । ब्याह की लाल बनारसी साड़ी पहने, माथे पर चन्दन की रेखाएँ लिए दुलहिन बनी मिनी लाज से भरी मेरे पास आकर खड़ी हो गई ।

उसे देखकर काबुलीवाला पहले तो सकपका-सा गया—अपनी पुरानी बातचीत न चला सका । अन्त में हँसकर बोला, "खोंखी, तुम ससुराल जाओगी ?"

मिनी अब ससुराल शब्द का मतलब समझती है । अब उससे पहले की तरह जवाब देते न बना । रहमान का सवाल सुनकर शर्म से लाल हो, मुँह फेरकर वह खड़ी हो गई । काबुली से मिनी के पहले दिन की मुलाकात मुझे याद आ गई । मन न जाने कैसा व्यथित हो उठा ।

मिनी के चले जाने के बाद एक लम्बी साँस लेकर रहमान वही जमीन पर बैठ गया । अचानक उसके मन मे यह बात साफ हो गई कि उसकी लड़की भी इस बीच इतनी ही बड़ी हो गई होगी और उसके साथ भी उसे नये ढंग से बात-चीत करनी पड़ेगी—उसे फिर से पहले जैसी वह नही पाएगा । इन आठ वर्षों में न जाने उसका क्या हुआ होगा । सवेरे के वक्त शरद् की उजली कोमल धूप मे शहनाई बजने लगी और कलकत्ता की एक गली मे बैठा हुआ रहमान अफगानिस्तान के मरुपर्वतों का दृश्य देखने लगा ।

मैंने उसे एक नोट निकाल कर दिया । कहा, "रहमान, तुम अपने वतन अपनी बेटी के पास चले जाओ । तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी का कल्याण होगा ।"

यह रुपया दान करने के बाद मुझे विवाहोत्सव की दो-चार बातें कम कर देनी पड़ी । मन में जैसी इच्छा थी, उस तरह रोशनी नही कर सका, किले का अँग्रेजी बाजा भी नही मँगा सका । घर मे औरतें बड़ा असन्तोष प्रकट करने लगी । लेकिन मंगल-ज्योति से मेरा शुभ उत्सव उज्ज्वल हो उठा ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. जानकारी के लिये बच्चों द्वारा एक के बाद एक प्रश्न पूछते जाने से उनकी कौन सी विशेषता प्रकट होती है ?

(क) जिज्ञासा
(ख) वाचालता
(ग) भोलापन
(घ) चचलता
(च) विनोदशीलता ( )

२. "रहमान तुम अपने वतन अपनी बेटी के पास चले जाओ। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी का कल्याण होगा।"

उक्त कथन से लेखक का कौन सा मनोभाव प्रकट होता है ?

(क) आत्मतोष
(ख) सहानुभूति
(ग) पश्चाताप
(घ) लाचारी
(च) बड़प्पन ( )

३. 'देखकर मेरी आँखें सजल हो आईं', लेखक की आँखें सजल होने से उनकी किस भावना का परिचय मिलता है ?

(क) मित्रता
(ख) सहानुभूति
(ग) दया
(घ) करुणा
(च) सरलता

४. काबुली वाला की वेश भूषा किस प्रकार की होती थी ?

५. स्वयं, चिल्ला-चिल्ला कर काबुली वाला को बुलाने वाली मिनी उसको देखकर किस कारण घर में भाग गई ?

६. मिनी की माँ काबुली वाला से सदैव शंकित क्यों रहती थी ?

७ लेखक रहमान की किन विशेषताओं से प्रभावित हुये ?

८. जेल से छूट कर आये रहमान को देखकर लेखक का अन्तःकरण क्यो सकुचित सा हो गया ?

६. मिनी और काबुली वाला मे हुए वार्तालाप को अपने शब्दो में लिखिये । उत्तर लगभग ७० शब्दो मे हो ।

१०. काबुली वाला मिनी से स्नेह क्यो करता था ?

११. लेखक से रुपये प्राप्त कर काबुली वाला ने क्या किया होगा ? लगभग ५० शब्दों मे उत्तर लिखिये ।

१२. काबुली वाला को हत्यारा समझते हुए भी लेखक ने उसकी मदद क्यो की ?

कहानी के क्षेत्र मे उन्होने खलील जिब्रान और ईसप के दृष्टान्तों जैसी छोटी छोटी कथाएँ लिखी जो बहुत प्रचलित हुईं। कतिपय कहानियाँ बड़ी होने पर भी उनमें अनवरत प्रवाह है और वे कहानी-कला के दोषों से सर्वथा मुक्त हैं। 'प्रेमा चे नाव', 'पतंग', दोनटोकें, 'मनांतली भूते', 'विकास', 'चन्द्रकोर' आदि अन्य कहानियाँ पठनीय हैं।

कहानी कला :

उन्होने कहानी को जीवन के प्रति उन्मुख और आदर्शवादी बनाया है उनकी कहानियों मे स्थान स्थान पर हास्य का पुट है। खांडेकर की अधिकांश कहानियाँ निर्धनो और मजदूरो के जीवन से सम्बन्धित हैं जिनमे पूँजीवाद के अत्याचारों का हृदय-द्रावक चित्र देखने को मिलता है। वे मराठी के मोपासां कहे जा सकते हैं। वे ध्येयवादी कहानीकार हैं जिन्हें ध्येय का व्यक्तिकरण खूब आता है। उनका प्रकृति वर्णन अनूठा है। कथानक के अनुकूल और आकर्षक शीर्षक देने मे श्री खांडेकर को कमाल हासिल है।

फंदो :

ग्रामीण क्षेत्रो मे नवयुवकों का आकर्षण खेतो से हटकर खदानों व कारखानों में मजदूरी तलाश करने की ओर होता जा रहा है। वे लोग सुनी सुनाई जानकारी के आधार पर गाँव छोड़ कर दूर दूर जाने के लिये आवश्यक किराया न होने पर भी कर्ज करते हैं और बडी आशा लगाये मजदूरी की तलाश में निकल पड़ते हैं। मजदूर अधिक हैं और मजदूरी आसानी से मिलती भी नही। फलत: उनके सारे मनसूबों पर पानी फिर जाता है और सुनहरे सपने साकार नही हो पाते। पश्चाताप की ज्वालाओं मे लाचार हो कर वे जलते रहते है।

इस सबकी प्रतिक्रिया नौजवानो पर क्या होती है उसका एक चित्र इस कहानी में चित्रित किया गया है।

धूप हँस रही थी। फुदक रही थी, उस धूप में नीले रग की गाड़ी चमक रही थी।

गाड़ी के पायदान पर मैंने कदम रखा ही था कि कोई जोर से चिल्ला पड़ा। मैं चौंका! एकदम मुड़कर मैने पीछे देखा। सत्रह-अठारह साल का एक लड़का, आनन्द में मस्त होकर, अपने दोनों हाथ हिला रहा था और इस तरह चिल्ला रहा था जैसे किसी को आवाज दे रहा हो। वह अपने हाथ इस तरह हिला रहा था जिस तरह कि गार्ड रेलगाड़ी को झण्डी दिखाता है। उसका रग सांवला था। पतझड के कारण, कोई ऊँचा पौधा जैसे और भी अधिक विचित्र दिखता है, उस तरह उसका बदन दीख रहा था। उसके बदन पर, एक मैला कुरता था, जिस पर बेलगाँव की लाल मिट्टी ने अपना हाथ फेर दिया था और जिसके फलस्वरूप उसका पहले का मैलापन और भी अधिक गन्दा लग रहा था।

अब वह लड़का जोर-जोर से तालियाँ बजाने लगा। बीच ही में दाहिना हाथ उठाकर वह चिल्लाया जैसे किसी को पुकार रहा हो। उसकी वह पुकार मेरी समझ मे न आई। वह शब्द मराठी तो था ही नहीं, लेकिन कनाड़ी भी न था। पुकारते वक्त अन्तिम अक्षर को लम्बा करने का उसका ढग भी बड़ा अजीब-सा लगा। जिस दिशा की ओर देख कर उसने हाथ ऊपर उठाया था, उस ओर मै ध्यान से देखने लगा—

पन्द्रह बीस लोग जल्दी-जल्दी गाड़ी की तरफ चले आ रहे थे। कवायद करने वाले सिपाहियो की तरह वे सब सीना तानकर चल रहे थे। लेकिन इन सिपाहियो का आखरी आदमी मुझे बिलकुल बेकार प्रतीत हुआ। चिँउँटियो की तरह चली आने वाली उस कतार में वही एक पीछे रह गया था। गरदन लटकाये बड़े आराम से चला आ रहा था वह! किसी थके हुये जानवर की तरह!

वह लड़का कुछ समय पहले से शायद इसी आदमी को पुकार रहा था।

क्योंकि बीच ही मे उस आदमी ने गरदन उठाकर अपना हाथ हिलाया और उसे देखते ही लड़के की मुद्रा आनन्द से खिल उठी। गाड़ी के दरवाजे के नजदीक खड़े हुए कंडक्टर से, उसने उचकते उचकते ही कहा—"रड्डी, रड्डी।"

मैं असमंजस मे पड़ गया। रेडी बेलगाँव के नजदीक के एक गाँव का नाम है, यह तो मैंने सुना था। लेकिन रड्डी नाम आज मैं पहले ही सुन रहा था। मैंने कंडक्टर से पूछा—"कहाँ जा रहे हैं ये लोग?" उसने उत्तर दिया—"रेडी!"

वह लड़का शायद रेड़ी को रड्डी कहता था।

"रेड़ी? शिरोडा के नजदीक की रेडी?" मैंने प्रश्न किया।

"हाँ।"

"वहाँ कल क्या कोई मेला-वेला है?" उस लड़के के उमड़कर बह रहे उत्साह की ओर देख कर मैंने पूछा।

वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर कोंकण मे मेले शुरू हो जाते हैं। ऐसे मेलो मे उन-उन गाँवों के लोग बड़ी दूर से आते हैं। कितने भी गरीब हों, तब भी अपनी गाँठ से पैसे खर्च कर ये इनमें शामिल होते हैं। अपने ग्राम-देवता के प्रति उनकी असाधारण श्रद्धा होती है।

मेरा प्रश्न सुनकर कंडक्टर हँसते हुए बोला—"मेला तो है वहाँ लेकिन वह गाँव के देव का नहीं।"

"फिर?"

"पेटोबा के मेले मे जा रहे हैं ये लोग।"

उसकी इस बात का रस ठीक से मेरे ध्यान मे न आया। देवों के नाना प्रकार के विचित्र नाम मैंने बचपन में सुने थे। लेकिन खंडोबा से लेकर वेतोबा तक की लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त मे पेटोबा का नाम कभी मेरे कानों में न पड़ा था।

मेरे मन में जो गड़बड़ी मच गई थी उसका प्रतिविम्ब शायद मेरे चेहरे पर पड़ गया था। उसे देखकर ही शायद कडक्टर बोला "रेड़ी मे खदान का काम जोरो से शुरू हो गया है। वही जा रहे हैं ये लोग।"

"कौन-सी खदान?"

"लोहे की।"

सामन्तवाडी मे मेरा घर होते हुये भी पिछले पाँच सालों मे, मैं उस तरफ फटका तक न था, इसलिये सामान्तवाड़ी से सत्रह-अठारह मील दूर रेडी में जो खदान शुरू हुई थी उसकी जानकारी मुझे न थी।

रेड़ी जाने वाले वे लोग नजदीक आये। उस कतार का आखिरी मनुष्य मुझे स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। बहुत बूढ़ा था वह। चेहरा चिपका हुआ, झुर्रीदार, बुझ रही दीप-ज्योति की तरह उसकी आँखें प्रतीत हुई मुझे। आगे के लोग चल रहे थे इसलिये शायद वह एक-एक कदम आगे बढ़ रहा था, वरना खेत मे चिड़ियो को डराने के लिये बनाई जाने वाली विभीषिका की तरह वह एक ही जगह चुपचाप खडा रहता। उसकी मद चाल से लेकर उसके निस्तेज चेहरे तक प्रत्येक बात यही कह रही थी।

वह बूढा निराशा की मूर्ति था। वह लड़का आशा का पुतला था। उन आदमियों के नजदीक आते ही वह दौड़ता हुआ बूढे के पास गया और दोनों हाथो से उसे करीब-करीब खीचता हुआ ही गाड़ी के पास लाने लगा। उसे ऐसा हो गया था कि हम कब रेड़ी पहुँचते हैं और वहाँ की खदान मे काम करने लगते हैं। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ उसके इस वर्ताव पर।

इस विचार से कि इस भीड़ के गाड़ी मे प्रवेश करने से पहले ही, मै जाकर अपनी सीट पर बैठ जाऊँ, मैं भीतर चढ़ गया। मेरे पीछे-पीछे ही वह लड़का बूढ़े को साथ लिये भीतर आया। दोनों मेरी ही बेंच पर बैठे।

× × × ×

गाड़ी छूटने पर मैंने उस लड़के से बात करने की कोशिश की। मेरी मराठी भाषा तो वह बिलकुल समझता ही न था लेकिन, दो-तीन वाक्य बोलते ही मेरे ध्यान में आया कि वह मेरी टूटी फूटी हिन्दी भी नही समझता है। मैंने बात करना बन्द कर दिया। वह बार-बार रड्डी-रड्डी कह रहा था और हाथ को काफी ऊँचा उठाकर अभिनय की तरह से यह दिखा रहा था कि हम लोग बड़ी दूर से आये हैं। इसके परे और अधिक जानकारी प्राप्त होना सम्भव नही।

अन्त में ऊँघ रहा बूढ़ा बीच में बोल पड़ा। उसे टटपुँजिया ही क्यों न हो, लेकिन हिन्दी का ज्ञान था। उसकी बातों से, मुझे साधारणतः यह बोध हो गया कि ये लोग बम्बई राज्य की सीमा पर बसे एक दूर के गांव से आये है। उनकी मातृभाषा तेलगु है। इस बूढ़े को छोड़कर और किसी को भी हिन्दी नही आती। उनके गांव के नजदीक रहने वाला कोई मनुष्य रेडी की खदान में काम करता था। वह जब लौटकर अपने गांव आया तो उसने वहां लोगो से कहा कि रेडी की खदान मे मजदूरों की जरूरत है। यह सुनकर ये सब लोग रेडी जा रहे हैं। वहां पहुँचने के लिये आवश्यक किराया भी प्रत्येक ने कर्ज लेकर किसी तरह जुटा लिया है। इस डर से कि यदि यह गाड़ी चूक गई तो एक दिन बेलगांव मे काटना पड़ेगा, सब घबरा गये थे। इसलिये बूढ़े का नाती दौड़ता हुआ पहले आ गया था। सौभाग्य से उन्हें गाड़ी मिल गई। अब उन्हें कोई फिक्र न थी। सब लोग शाम को रेडी पहुँच जायेंगे।

यह सारा वृतान्त सरल और सीधा था, इस गरीब देश के नीचे तबके के किसी भी मनुष्य की कहानी शोभा दे, ऐसा ही था! लेकिन ये सब लोग खासकर यह बूढ़ा, अपनी जन्मभूमि छोड़कर इतनी दूर क्यों आया, यह मैं न समझ पाया। क्षण भर के लिये मन मे मैंने स्वयं उस बूढ़े का स्थान ग्रहण किया। एकदम मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बुढ़ापे में जन्मभूमि छोड़कर वह सकड़ों मील दूर कष्ट उठाता हुआ आया था।

जहाँ उसका घर नहीं, उसके लोग नहीं, उसकी भाषा नहीं— ऐसी जगह वह जा रहा था। मेरे मन में आया मुझ पर यदि यह मौका आ जाय तो इतने पराये स्थान में मैं चार दिन भी न रहूँगा। जहाँ हमारे लोग हैं, हमारी भाषा है, वहाँ की नमक-रोटी काफी है। लेकिन वह परायेपन के घी से चुपड़ी हुई रोटी, ना बाबा! कल यदि इस बूढ़े को कोई तकलीफ हो गई तो उसकी ओर कौन ध्यान देगा?

इस विचार से, बेचैन होकर मैंने बूढ़े से कहा— "इतनी दूर तुम क्यों आये दादा जी?"

उसने उदासी भाव से कहा—"हम नहीं आये बाबा।"

"फिर?"

"हमे ले आया है।"

'कौन?"

"ऊपर का साहब।"

"कौन साहब?"

बूढ़े ने माथे पर हाथ लगाकर उस साहब के रहने का स्थान दिखाया। फिर वह बोला—"हम सब कैदी हैं बाबा—इस पेट के कैदी हैं बाबा—वह जहाँ ले जाय वहाँ जाना पड़ता है हमे।"

नाती के कंधे पर सिर टिकाकर बूढ़े ने आँखें बन्द कर ली। शायद उसके जीर्ण शरीर को इस लम्बे सफर की थकावट महसूस हो रही थी।

कितनी ही देर तक मैं बूढ़े के उस विलक्षण वाक्य पर विचार कर रहा था—"हम सब कैदी है, बाबा!" किसी अन्धकार से भरी हुई गुफा मे हम घुसे और चलते-चलते पैरों मे दर्द होने लगा, लेकिन प्रकाश की एक बारीक किरण भी दिखायी न दे, इस वाक्य के पीछे जाते-जाते वही स्थिति मेरी हो गई। मेरा मन घुटने लगा। सिर दर्द करने लगा। उस बधिर मनःस्थिति में ही मेरी आँख कब लग गयी, इसका मुझे पता तक न चला।

× × × ×

मैं जागा, उस लड़के के आनन्द-विभोर होकर चिल्लाने के कारण। यह देखने के लिये कि उसे इतना आनन्द क्यों हुआ है, मैंने आँखें खोल कर देखा। गाड़ी आँबोली का घाट उतर रही थी। हरी साड़ी, हरी चोली, हरी चूड़ियाँ, इस तरह सारा हरा सिंगार की हुई युवती की तरह आस-पास की वन-श्री दिख रही थी। गाडी जल्दी-जल्दी मोड़ ले रही थी और हर मोड पर, बायीं तरफ के पहाड़ से कलकल निनाद करता हुआ छोटा-सा जल-प्रवाह मुसाफिरों का प्रसन्न मुख से स्वागत कर रहा था। वह लड़का प्रकृति का यह सारा वैभव देखकर हर्ष विभोर हो उठा था और अपने दादा को जगाकर उससे यह सब देखने का बार-बार आग्रह कर रहा था लेकिन बूढ़े का सिर्फ शरीर ही नहीं मन भी थक गया था। वह अधखुली आँखों से क्षण-भर के लिये थोड़ा इधर-उधर देखता और फिर गर्दन को झटकाकर यह अभिप्राय व्यक्त करके कि उसका लड़का पागल है, आँखें बन्द कर लेता।

गाडी सामन्तवाडी पहुँची। अब रेडी जाने के लिये इन सब लोगों को शिरोडा की गाडी पकडनी थी। जब यह मालूम हुआ कि उस गाड़ी के छूटने मे आधा घण्टे की देर है तो वह बूढ़ा मुझसे बोला—"हम लोगों को इस गाँव की कोई जानकारी नहीं। यदि आप हमें कोई होटल दिखा दें तो हम पर बड़ी कृपा होगी आपकी। वहाँ थोडी चाय पीकर फिर गाड़ी में जा बैठेंगे।"

मेरा घर सालईवाडे मे था। इस कारण इन लोगों को होटल दिखाने के लिये मुझे जानबूझकर कहीं दूसरी तरफ जाने की जरूरत न थी। मैंने बड़ी खुशी से बूढे से कहा—"चलो!"

बात-की-बात में, हम मोती तालाब के पास आये। वर्षा-ऋतु हाल ही में समाप्त हुई थी, इसलिये तालाब में विपुल जल था। उस जल पर नाच रही नाजुक तरंगों का, एक दूसरे के पीठ के छूने का खेल बड़ा मोहक हो रहा था। उस दृश्य को देखकर, ऐसा आभास हो रहा था जैसे किसी महीन नीले वस्त्र मे एक क्षण में चुन्नटें पड़ रही हो और दूसरे ही

क्षण विलुप्त हो जाती हों। इसी समय, आकाश में धूप और बादलों की आंख-मिचौनी शुरू हो गई। तालाब उस खेल को फिल्म उतारने लगा।

मैं यदि अकेला होता तो यह अपूर्वशोभा देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहता। लेकिन मेरे साथ के लोगों को चाय पीकर गाड़ी पकड़नी थी। इसलिये मैं जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगा। इसी समय पीछे से बूढ़े की क्रोध भरी आवाज मेरे कानों मे पडी। उसका नाती कतार छोड़कर दौडता हुआ तालाब के किनारे जा पहुँचा। बिलकुल तालाब के किनारे पर जाकर खड़ा हो गया था। तैरने के लिये कूदने के अन्दाज मे खड़ा था।

बूढ़ा-जल्दी-जल्दी तालाब के किनारे गया। नाती का हाथ पकड़ कर वह उसे पीछे खींचने लगा। किसी भी तरह वह बूढ़े की नहीं सुन रहा था। अन्त मे बूढ़ा चिढ उठा और उसने नाती के मुँह पर एक चाँटा जमा दिया। फिर वह मेरी ओर देखता हुआ बोला—"एक नम्बर का आवारा है यह छोकरा, इसे काम वाम कुछ नही चाहिये। यह क्या अपनी माँ को साड़ी के लिये पैसा भेजेगा?'

× × × ×

दूसरे दिन, शाम को सारे कामों से निपटकर, मैं टहलता हुआ मोती तालाब की तरफ आया। वर्षा ऋतु की समाप्ति के समय की सायकाल आकाश की रगपचमी ही होती है। लाल, फीका लाल, गुलाबी, सिन्दूरी, मटमैला लाल, अंजीरी आदि कितने ही रंग आकाश मे उँडेले जा रहे थे। छोटे-बड़े रगीन बादल मोती तालाब में अपना रूप टकटकी से देख रहे थे। मैं उनकी हलचल की ओर देखता रहा। जादू के खेल में छोटे बालक जिस तरह खो जाते हैं, उसी तरह मैं भी खो गया।

कह नही सकता कि इस हालत में कितना वक्त गुजर गया? मैं अपनी तन्द्रा से जागा किसी के अस्पष्ट स्पर्श से मैंने मुड़कर देखा। मेरे पीछे कल वाला वह बूढ़ा खड़ा था। उसके सारे साथी उसके साथ ही थे। उसका नाती तालाब के किनारे काले पड़ रहे पानी की ओर देख रहा था।

मैंने आश्चर्य से कहा—"यह क्या ? तुम लोग यहाँ कैसे ।"

बूढ़े ने बोलने की कोशिश की। लेकिन उसके मुँह से शब्द ही न निकला। उसके होंठ हिले, यह आभास मुझे अवश्य हुआ।

मैंने पुनः प्रश्न किया "क्या कल तुम लोग रेड़ी नहीं गये ?"

"गये थे"

"फिर ?"

"वहाँ खदान का काम शुरू हो गया है न ?"

"हाँ।"

"फिर तुम सब लोग लौट क्यों आये ?"

"उन्हें जितने मजदूरों की जरूरत थी, उतने पहले ही मिल चुके हैं। फिर हमें काम कौन देगा ? इसलिये लौट आये। अब यदि घर लौटें तो किराये के लिये पूरे पैसे भी नहीं हैं किसी के पास।"

कोई हमेशा होने वाली मामूली बात जिस तरह कही जाती है, उसी तरह वह बूढ़ा यह सब निर्विकार स्वर मे कह रहा था। लेकिन उसकी बात सुनकर मेरी आँखों के सामने से जो चित्र जल्दी-जल्दी सरकने लगे वे बिलकुल निराले थे। रास्ते पर डाल दिये गये अनाथ बालक, पतियों द्वारा त्याग दी गयी अभागिनी स्त्रियाँ, जिनके घर मिट्टी में मिल गये हैं वे शरणार्थी।

कहाँ इस बूढ़े की जन्मभूमि और कहाँ कोंकण के एक कोने की यह सामन्तवाड़ी। यहाँ उसे और उसके साथियों को कौन पहचानेगा ? उनकी मश्किलें और अड़चनें कितनी भी सच हों, फिर भी सहानुभूति से उन्हें कौन जान लेगा ? भगवान जाने ये लोग अपने घर वापस कैसे पहुँचेंगे ? और वहाँ पहुँचकर भी आगे वे लोग क्या करेंगे ? वहाँ पेट नहीं भरता था, तभी तो सुनी हुई जानकारी पर विश्वास रखकर, दौड़ते हुये इतनी दूर आये।

उस बूढ़े की जगह मुझे किसी ने खड़ा कर दिया। अपनी भाषा नहीं, अपना घर नहीं, अपने लोग नहीं, ऐसे स्थान मे जेब मे जहर खाने

को पैसा नहीं, ऐसी हालत में……।

छिः ! मेरे रोंगटे खड़े हो गये । मैंने जेब में हाथ डाला । रुपये-रुपये के दो नोट निकालकर उस बूढ़े के हाथ में रखता हुआ मैं बड़बड़ाया —"मुझ में अधिक देने की शक्ति होती तो—"

वह हाथ जोड़कर, कृतज्ञतापूर्वक स्वर में बोला—"ये लाख रुपये हैं हमारे लिये बाबा ! आपने हम पर बहुत बड़े उपकार किये । आज रड्डी में काम नहीं मिला तो कल दूसरी जगह मिल जायगा । हम बम्बई जाएँगे । चार आठ दिन रास्ते में तकलीफें होंगी । उनसे मैं इतना नहीं डरता । लेकिन जब से यह मालूम हुआ है कि रड्डी में काम नहीं मिलता, तब से मेरे नाती को देखिये, बिलकुल पागल जैसा हो गया है ।"

बूढ़ा रुका । डबडबाई हुई निस्तेज आँखों से वह तालाब के किनारे की ओर देखने लगा ।

वह लड़का तालाब के पानी की तरफ किसी पुतले की तरह देखता हुआ खड़ा था । उसकी पीठ में कुछ टेढ़ापन सा आ गया था जो बड़ा अजीब दिख रहा था, जैसे कल का वह जवान लड़का आज बूढ़ा हो गया था । बूढ़े ने उसे बड़े दुलार से पुकारा । लेकिन उसने गरदन न उठाई और न पीछे मुड़कर देखा ।

बूढ़े ने किंचित्, कम्पित स्वर में मुझ से कहा, "दोपहर से रोटी का टुकड़ा भी नहीं छुआ है, लड़के ने । वह माँ से नई साड़ी खरीदने के लिये कह आया था । लेकिन उसके मन को बहुत गहरी चोट पहुँची है, आज। बच्चा है अभी, सिर्फ जिन्दा रहने के लिये मनुष्य को क्या-क्या मुसीबतें……"

बोलते-बोलते बूढ़ा तीर की तरह लड़के की ओर दौड़ पड़ा जैसे उसकी जवानी उसे वापस मिल गयी थी ।

यह लड़का अधिक झुककर तालाब में देखने लगा । वह आत्महत्या करने की सोच रहा था क्या ? वो भगवान ही जाने ! इधर दोनों

यह लगा कि संतुलन खोकर वह गिर रहा है, लेकिन, इसी बीच बूढ़े ने दौड़कर लड़के को कसकर अपने हृदय से लगा लिया और उसके मुँह पर बार-बार हाथ फेरता हुआ उसे समझाने लगा।

इस स्थिति में, एक दो मिनट बीत गये। किसी अप्रिय मनुष्य को टाले, उस तरह उस बूढ़े ने उस तालाब की ओर पीठ फेरी। नाती का हाथ पकड़ते हुये जल्दी-जल्दी चलने लगा। उन दोनों के पीछे-पीछे बाकी के लोग धीरे-धीरे कतार बनाकर जाने लगे।

चलते-चलते बूढ़े को शायद मेरी याद आयी होगी। वह एक दम रुक गया। उसने अपने दायें हाथ में नाती का हाथ मजबूती से पकड़ रखा था। उसे उसी तरह पकड़े हुये उसने अपना बायाँ हाथ ऊपर उठाया और मुझे सम्बोधित कर उसे बार-बार हिलाया। स्टेशन से गाड़ी छूटने का समय होते ही गार्ड झण्डी हिलाता है न! बूढ़े का वह हाथ हिलाना देखकर उसका स्मरण हुआ मुझे।

बूढ़ा मेरी ओर देख रहा था। लेकिन उसके नाती ने क्षण-भर के लिये भी अपनी गर्दन ऊपर नहीं उठाई। कल वेलगाँव में वह कितनी खुशी में गाड़ी की ओर दौड़ता हुआ आया था और आज? कल जो फूल खिला हुआ था, आज वह मुरझा गया था।

मुझे बूढ़े का कल का वाक्य याद आया–"हम सब कैदी हैं बाबा!" वे लोग धीरे-धीरे दूर जा रहे थे। मेरी नजरों के सामने से सरकने वाली कैदियों की कतार—छिः! कैदियों को भी शाम की रोटी मिलने का विश्वास होता है—आश्रय निश्चित होता है।

मुझसे उस कतार की ओर देखा नहीं जाता था। मैंने तालाब की ओर दृष्टि मोड़ी। उसका पानी अब बिलकुल स्याह हो गया था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. वृद्ध के नाती का रेढी जाते समय दौड़ कर तालाब के किनारे जा पहुँचने का क्या कारण था?

(क) वह तालाब मे से मछली पकडना चाहता था।
(ख) वह प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेना चाहता था।
(ग) वह स्वय तालाब में स्नान करना चाहता था।
(घ) वह तालाब मे नहा रहे बालकों को नजदीक से देखना चाहता था।
(च) वह संभवत. आत्म-हत्या करना चाहता था। ( )

२. 'लड़के के मन को बहुत गहरी चोट पहुँची है' वृद्ध ने कहा। चोट का वास्तविक कारण क्या था ?
(क) वृद्ध बाबा के दुर्व्यवहार के कारण।
(ख) गाँव के साथियो से झगड़ा हो जाने के कारण।
(ग) लोहे की खान पर मजदूरी नही मिलने के कारण।
(घ) खाली हाथ घर लौटने की मजबूरी के कारण।
(च) किराये के पैसे व्यर्थ ही व्यय हो जाने के कारण। ( )

३. लेखक ने बूढ़े को दो रुपये किस भाव से प्रेरित होकर दिये ?
(क) दया (ख) प्रेम (ग) सहानुभूति (घ) करुणा (च) पुण्य। ( )

४. 'लड़का आनन्द विभोर हो रहा था' उसके आनन्द विभोर होने का क्या कारण था ?

५. दूर से चलकर आये १५—२० लोग रेल मे बैठकर किस उद्देश्य से कहाँ जा रहे थे ?

६. 'वह बूढ़ा निराशा की मूर्ति था।' लेखक ने बूढे को निराशा की मूर्ति क्यों कहा है ?

७. लेखक के पूछने पर कि तुम इतनी दूर क्यो आये वृद्ध ने क्या उत्तर दिया ?

८. 'हम सब कैदी है बाबा—इस पेट के कैदी हैं बाबा—।' वृद्ध ने सबको पेट का कैदी क्यो कहा है ?

९. कल्पना कीजिए कि किसी बड़ी आशा से आप कोई काम प्रारम्भ करे, पर दुर्भाग्य से उसका फल आपको अनुकूल न मिले, तब आपकी मन.स्थिति क्या होगी ? अपना उत्तर ५० शब्दों में लिखिये।

१०. रेलगाडी के कडक्टर ने बिना पूछे भी लेखक को खदान की बात क्यों बताई ?

११. वृद्ध की तुलना खेतो मे बनाई जाने वाली विभिपिका से क्यों की गई है ?